ग्रामीण विकास
को समर्पित

कुरुक्षेत्र

वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

वर्ष 53 अंक : 11 सितम्बर 2007 मूल्य : 10 रुपये

आओ स्कूल चलें हम

हमारे नये प्रकाशन

पुस्तक मंगवाने के लिये संपर्क करें

व्यापार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

सूचना भवन, सी.जी.ओ.काम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003

फोन:2436 7260

KH-09/07/01

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 53 ★ मासिक अंक ★ पृष्ठ : 48

भाद्रपद–आश्विन 1929, सितम्बर 2007

प्रभारी सम्पादक

कैलाश चन्द मीना

संपादकीय पत्र–व्यवहार

संपादक, **कुरुक्षेत्र**

कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,

गेट नं. 5, निर्माण भवन

ग्रामीण विकास मंत्रालय

नई दिल्ली–110011

दूरभाष : 23061014, 23061952

फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास

वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in

ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)

एन.सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक

जगदीश प्रसाद

दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

आवरण एवं सज्जा

संजीव सिंह और रजनी दवे

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	550 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	750 रुपये (वार्षिक)

कुरुक्षेत्र

इस अंक में

- प्राथमिक शिक्षा : बुनियादी आवश्यकता — तीर्थ प्रकाश व संतोष कुमार सिंह — 4
- भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रसार : दशा और दिशा — जितेन्द्र कुमार पाण्डेय — 7
- प्राथमिक शिक्षा और सरकारी कार्य योजना — अखिलेश आर्येन्दु — 10
- पूर्ण साक्षरता के लिए वरदान : मिड–डे मील कार्यक्रम — बैजनाथ पाण्डेय — 13
- राजस्थान में शिक्षा का परिदृश्य — डॉ. ऋतु सारस्वत — 15
- शिक्षा की भूमिका और हमारा देश — प्रांजल धर — 18
- प्राथमिक शिक्षाः बढ़ता प्रयास–घटता स्तर — मयंक श्रीवास्तव — 22
- शिक्षा का मूल अधिकार — देवाशीष उपाध्याय — 26
- शिक्षा का लक्ष्य : जन–जन का विकास — प्रतोष शुक्ला — 29
- ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के बढ़ते कदम — नवीन पंत — 32
- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना : एक विश्लेषण — डॉ. अनिता मोदी — 35
- भारत का विदेश व्यापार (स्वतंत्रता दिवस की 60वीं वर्षगांठ) — गोपाल के. पिल्लै — 37
- किसानों की बदहाली तथा समाधान के उपाय — डॉ. वन्दना सिन्हा — 40
- नीम का कृषि, पर्यावरण एवं हमारे जीवन में महत्व — डॉ. राकेश कुमार प्रजापति व डॉ. भवानी शंकर गुप्ता — 43
- विस्थापित बच्चों के लिए सतत शिक्षा सुनिश्चित करना — – — 47

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

संपादकीय

भारत में शिक्षा का स्वर्णिम इतिहास रहा है। हमारे यहां शिक्षा और ज्ञान के महत्व को प्राचीन काल से ही समझा गया है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पर धर्म और दर्शन का काफी प्रभाव रहा है। आधुनिक शिक्षा के प्रसार–प्रचार का श्रेय ब्रिटिश शासन और प्रगतिशील भारतीयों को जाता है। इस दौरान जनसंख्या दर तेजी से बढ़ी, साक्षरता दर स्थिर–सी रही और शिक्षा आम लोगों की पहुंच के बाहर होती चली गई।

समय बदला, देश आजाद हुआ और सरकार ने सबको शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए नई–नई योजनाएं बनाई । जगह–जगह नए स्कूल, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय खोले गए। इस प्रयास से असमानता और छुआछूत जैसी सामाजिक बुराई का अंत हुआ और सभी वर्गों के लोगों को राजनीति और प्रशासन में उच्च पद पर आसीन होने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। केंद्र और राज्य सरकार की कार्य योजनाओं के द्वारा पिछड़े और दूर–दराज के गांवों में स्कूल खोले जाने लगे हैं।

आज हम स्वतंत्रता की साठवीं सालगिरह पर गर्व से कह सकते हैं कि भारत के वैज्ञानिक, इंजीनियर, डाक्टर तथा शिक्षाविद् देश में ही नहीं विदेशों में भी अपने ज्ञान को मानव सेवा में लगा रहे हैं। शिक्षित और सभ्य मनुष्य उसे ही माना जाता है जो अपने जीवन का आधा समय जनकल्याण की सेवा में लगा देता है। आज समाज और सरकार को ऐसे ही शिक्षित लोगों की सेवाओं की आवश्यकता है जो ईमानदारी से राष्ट्र को प्रगति के पथ पर ले जाएं।

सरकार की कमियां और गलतियां हर कोई गिना सकता है पर हमें उस ओर नहीं देखना है। अगर हम इन उलझनों में उलझे रहे तो हमारी सोच नकारात्मक बनती चली जाएगी और सरकार की उपलब्धियों की तरफ किसी का भी ध्यान नहीं जाएगा। सबसे पहले अपने आप से पूछो, आपने देश और समाज के लिए क्या किया है और क्या करने जा रहे हैं ? अगर हमारी सोच सकारात्मक रही और हम सरकार का सहयोग करते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब भारत का नाम दुनिया में आदर के साथ लिया जाएगा।

हम पाठकों की पसंद को ध्यान में रखते हुए हर अंक में स्वास्थ्य से संबंधित लेख भी दे रहे हैं जिससे सामान्यजन को नई–नई जानकारियां मिल सकें। आशा है हमारा यह अंक आपको अच्छा लगेगा और नए पाठकगण हमसे जुड़ते चले जाएंगे। आपके सुझाव और प्रतिक्रियाओं का हमें इंतजार रहेगा ....

मत-सम्मत

"तेजी से होती रही जनसंख्या वृद्धि, तो कैसे आयेगी भारत में समृद्धि" नामक जनसंख्या पर केन्द्रित 'कुरुक्षेत्र' का जुलाई 2007 अंक पढ़कर अत्यधिक प्रसन्नता हुयी। मैं एम.एस.डब्ल्यू. प्रथम वर्ष का छात्र हूं। पत्रिका पढ़कर ऐसा लगा कि यह तो मेरे पाठ्यक्रम की ही पुस्तक है। यह मेरा पहला अंक है और आशा है कि भविष्य में इसी प्रकार के अंक प्राप्त होते रहेंगे।

पत्रिका में प्रकाशित सम्पादकीय, भारत की बढ़ती आबादी, जनसंख्या नियंत्रण : शिक्षा एक उपाय, ग्रामीण गरीबी तथा बेरोजगारी : कारण और समाधान लेख ज्ञानवर्द्धक हैं। टी.वी. पत्रकार एस. कुमार द्वारा लिखित भारत की बढ़ती आबादी नामक लेख में कही गयी एक बात "अगर हमने जल्द बेलगाम बढ़ रही आबादी को नियंत्रित करने की कोशिश नहीं की और जीने के लिये जरूरी संपदाओं को संवर्द्धित नहीं किया तो हमारी आने वाली पीढ़ी एक दिन हमसे ही पैदा करने के औचित्य पर सवाल पूछेगी।" स्वागत योग्य है। जिसके लिये मैं कुमार जी को हृदय से धन्यवाद कहना चाहूंगा।

सूर्यांक कुमार गुप्ता, लखनऊ विश्वविद्यालय

मैं आपके द्वारा प्रकाशित ग्रामीण विकास को समर्पित कुरुक्षेत्र पत्रिका का विगत 15 वर्षो से नियमित पाठक रहा हूं। जुलाई 07 का अंक जनसंख्या वृद्धि पर आधारित अंक में लेखक दयाशंकर सिंह यादव जी द्वारा "जनसंख्या दिवस" के अवसर पर आलेख "विश्व जनसंख्या में भारत का स्वरूप" काफी रुचिकर लगा। विश्व के दस सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों का वर्ण और आंकड़ा औसत वार्षिक वृद्धि दर काफी ज्ञानवर्द्धक है। इसी के साथ लेखक संदीप कुमार द्वारा लिखा आलेख "भारत की बढ़ती आबादी" लेखक अनिल मिश्रा द्वारा लिखा लेख "जनसंख्या नियंत्रण : शिक्षा एक उपाय" में भारत में शिक्षा का विकास, कैसा हो, जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम तथा जनसंख्या शिक्षा के महत्वपूर्ण उद्देश्य, जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता क्यों? भारत में जनसंख्या शिक्षा की समस्या, एवं इसके समाधान का जिस प्रकार से वर्णन किया है वह वास्तव में काबिलेतारिफ है और अन्त में कहना चाहूंगा कि कुरुक्षेत्र पत्रिका में अन्य विषय वस्तु भी ज्ञानवर्द्धक होती है।

सुजीत कुमार, भागलपुर, बिहार

पत्रिका कुरुक्षेत्र का जुलाई 2007 अंक पढ़ा। बेहद अच्छा लगा। पत्रिका का सम्पादकीय हमेशा से प्रेरणादायक सिद्ध होता है। पत्रिका के अनेक लेख काफी ज्ञानवर्धक साबित हुये। भारत की बढ़ती आबादी लेखक संदीप कुमार एवं लेख बढ़ती जनसंख्या बढ़ता दबाव लेखक ऋतु सारस्वत का लेख बेहद अच्छे लगे। स्वास्थ्य एवं कृषि से सम्बन्धित लेख भी काफी पसन्द आए। पत्रिका का नियमित पाठक हूं। इस पत्रिका के बारे में अपने ग्रामीण क्षेत्र के दोस्तों से समय–समय पर चर्चा करते रहते हैं।

अमन खान गौरी, खकसीस–जालौन, (उ.प्र.)

कुरुक्षेत्र का जुलाई 2007 का अंक हमारे हाथ में है। जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ यह भारतीय कृषि, बागवानी या अन्य पहलुओं के बारे में भरपूर जानकारी दे पाने में सक्षम है। कई महत्वपूर्ण लेखकों ने इस अंक में अपने–अपने विचार व्यक्त किये हैं जिसमें ऋतु सारस्वत, रमेश कुमार दुबे, प्रकाश नारायण नाटाणी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जहां एक ओर दयाशंकर सिंह यादव ने विश्व जनसंख्या में भारत के स्वरूप की सुंदर झांकी प्रस्तुत की है वहीं दूसरी ओर अनिल मिश्रा ने जनसंख्या नियंत्रण के सबसे कारगर उपाय पर बृहत रूप से प्रकाश डालने की कोशिश की है। इसके अलावा कवर डिजाइन भी काफी आकर्षक है जो जनमानस की चेतना को झकझोरने के लिए पर्याप्त है।

पल्लवी प्रिया, नालंदा, बिहार

मैं ग्रामीण विकास में समर्पित मासिक पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' का पिछले दो वर्षों से नियमित पाठक रहा हूं। यह पत्रिका आधी शताब्दी से अधिक समय से ग्रामीण जनता के विकास में अहम् भूमिका का निर्वहन कर रही हैं। 'कुरुक्षेत्र' के पिछले तीन–चार अंकों में काफी बदलाव देखने में आया है विशेषकर कवर डिजाइन, रंग संयोजना तथा साज सज्जा बहुत आकर्षक हुई है। हाल ही में प्रारम्भ किया गया 'सम्पादकीय' एक अच्छी शुरूआत है।

कुरुक्षेत्र का जून एवं जुलाई अंक बेहद ज्ञानवर्धक लेखों सहित पठनीयता की दृष्टि से उत्कृष्ट था। 'हाथ कंगन को आरसी क्या' जैसे–जैसे पत्रिका के पन्ने पलटता गया, तस्वीरों को देने का नया तरीका लेखों की लगातार बढ़ रही गुणवत्ता और उपयोगी बॉक्स आइटमों की संतुलित प्रस्तुति सभी ने मनोमस्तिष्क को मोह लिया।

अनीश भसीन, लाजपत नगर, नई दिल्ली,

कुरुक्षेत्र का जुलाई अंक देखा। अंक के सभी लेख जानकारीपूर्ण व सारगर्भित थे। जनसंख्या वृद्धि आज भारत की एक प्रमुख समस्या है। जनसंख्या के बढ़ने से हमारे सभी विकास कार्यक्रम निष्फल हो जाते हैं। अंक के पहले लेख 'विश्व जनसंख्या में भारत का स्वरूप' में भारत की बढ़ती आबादी का तुलनात्मक अध्ययन जानकारीपूर्ण है। महेन्द्रकुमार श्रीवास्तव व ऋतु सारस्वत के लेख काफी प्रभावशाली थे। इनके अतिरिक्त मक्का के संबंध में दी गई जानकारी काफी रोचक है। आज के फास्टफूड के दौर में ऐसी जानकारी देकर लोगों को मक्का जैसे पौष्टिक व सस्ते खाद्य पदार्थों के उपयोग के लिए प्रेरित किया जा सकता है। कुल मिलाकर अंक बहुत ही रोचक व ज्ञानवर्धक है।

सुनील जैन, तिमारपुर, दिल्ली

प्राथमिक शिक्षा : बुनियादी आवश्यकता

तीर्थ प्रकाश व संतोष कुमार सिंह

जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया "शिक्षा" अपने वास्तविक अर्थ में "सीखना" से जुड़ी है। शिक्षा मनुष्य द्वारा अपने आंतरिक और बाह्य परिवेश के साथ समायोजित होने की कला है। शिक्षा जीवन का वह आईना है जिसमें मनुष्य अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को प्रतिबिम्ब के रूप में देखता है। ये प्रतिबिम्ब ही संसाधन बनकर मानव व्यक्तित्व के विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। डॉ. एस.राधाकृष्णन ने शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा था कि "शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं है। न यह विचारों की संवर्धन स्थली है और न ही नागरिकता की पाठशाला है। यह आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश की दीक्षा है, सत्य की खोज में लगी मानव आत्मा का प्रशिक्षण है।" इस प्रकार शिक्षा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का आधार है। सही और गलत के मध्य फैसला करने का माध्यम है। निश्चित तौर पर शिक्षा जीवन के पुराने प्रतिमानों को समय की नई मांगों के अनुकूल बनाने या सामंजस्य बैठाने के रूप में देखा जा सकता है। समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासों को शिक्षा के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है, वहीं समाज में नवचेतना का संचार कर विकास के मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जा सकता है।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों में प्राथमिक शिक्षा विकास के उद्देश्यों में उस मां के समान है जो उंगुली पकड़कर बच्चे को न केवल चलना सिखाती है बल्कि प्रथम बार में उसमें आत्मविश्वास को रोपित करती है। गांधी जी ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "शिक्षा से मेरा अभिप्राय मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के गुणों का सर्वांगीण विकास करना है।" इन सभी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए तथा शिक्षा को अनिवार्य रूप से सुलभ और निःशुल्क बनाने के लिए संवैधानिक प्रावधानों में स्थान दिया गया। राज्य के नीति निदेशक तत्वों की धारा 45 में राज्य को निर्देशित किया गया कि 6–14 की वर्ष आयु वर्ग के बच्चों की शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने का दायित्व राज्य का होगा। स्वतंत्रता के छः दशक पश्चात् जब प्राथमिक शिक्षा अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकी तब 86वें संवैधानिक संशोधन 2002 द्वारा 6–14 वर्ष की आयुवर्ग के बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान करते हुए संविधान में एक नया अनुच्छेद 21 (ए) जोड़ा गया। प्राथमिक शिक्षा की दिशा में अगर सब कुछ ठीक रहा और समाज तथा राज्य ने सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए इसके लिए प्रयास किए तो वह दिन दूर नहीं जब देश का प्रत्येक बच्चा कागज, कलम और दवात से जुड़ पाएगा और शिक्षा में मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन आ पाएगा।

यहां आजादी के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा की दिशा में प्रयासों का वर्णन करना अनिवार्य हो जाता है, जो निम्न हैं–

- प्रथम शिक्षा आयोग,
- ए.बी.ए. शिक्षा समिति, 1949
- लक्ष्मण स्वामी मुरलीधर शिक्षा आयोग, 1952
- राम चन्द्रन शिक्षा समिति, 1956
- बुनियादी शिक्षा समिति, 1958
- हंसा मेहता शिक्षा समिति, 1962
- मुक्त वत्सल शिक्षा समिति, 1963
- कोठारी शिक्षा आयोग, 1964
- पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968
- चट्टोपाध्याय आयोग, 1985
- दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986
- आचार्य राममूर्ति शिक्षा समिति, 1990
- जनार्दन रेड्डी शिक्षा समिति, 1992
- प्रो. यशपाल शिक्षा समिति, 1993
- जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, 1994
- मध्याह्न भोजन योजना, 1995 (संशोधित 2004)
- सर्वशिक्षा अभियान, 2001

इन सभी योजनाओं/आयोगों/समितियों/कार्यक्रमों/अभियान द्वारा प्राथमिक शिक्षा की दिशा और दशा सुधारने का भरसक प्रयास किया गया। इन सभी प्रयासों में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क बनाने की दिशा में किया गया प्रयास है। जिसको मूर्त रूप देने के लिए प्राथमिक विद्यालय में पाठ्यपुस्तकों एवं दोपहर के भोजन की व्यवस्था की गई। विद्यालय शुल्क को सांकेतिक बनाकर (1 रुपया प्रतिमाह) लगभग निःशुल्क बना दिया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि आर्थिक समस्याओं के कारण माता–पिता अपने बच्चों को प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित न कर दें। भारत जैसे गरीब और विकासशील देश में बच्चों को आज भी आय के साधन के रूप में देखा जाता है। घर–परिवार की जीविका में बढ़ोत्तरी करने के लिए वे अपने श्रम को बेचकर पारिवारिक दायित्वों को भी निभा रहे हैं। स्वाभाविक है ऐसे बच्चों के लिए शिक्षा से ज्यादा भूख महत्वपूर्ण है। सरकार भी इस मर्म को समझती है और उसने बच्चों की शिक्षा पर माता/पिता/अभिभावकों को अपनी आय का कोई अतिरिक्त खर्च न करना पड़े इसके लिए मध्याह्न भोजन जैसे महत्वपूर्ण

कार्यक्रम लागू किए। इस योजना ने जहां बच्चों को पोषक भोजन उपलब्ध कराने की दिशा में प्रयास किए वहीं शिक्षा को निःशुल्कता तक लाने का प्रयास भी किया।

शिक्षा के मूलभूत लक्ष्यों को प्राप्त करना और इसके लिए संसाधन जुटाने की प्रतिबद्धता के चलते सरकार ने विगत् वर्षों में आवंटित धनराशि में भारी वृद्धि की है। शिक्षा के लिए निर्धारित योजना परिव्यय पहली पंचवर्षीय योजना (1951–56) के दौरान जहां 151.20 करोड़ रुपये था वहीं दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07) में इस परिव्यय में 43673.80 करोड़ रुपये की वृद्धि करते हुए इसे 43825.00 करोड़ रुपये कर दिया गया। प्राथमिक शिक्षा को इस योजना परिव्यय में 30000.00 करोड़ रुपये आवंटित हुए, जिससे विभिन्न कार्यक्रमों को लगातार संचालित किया जा रहा है, जो निम्न प्रकार है :

सर्व शिक्षा अभियान

वर्ष 2001 में आरम्भ किए गए सर्व शिक्षा अभियान जिसका आधार वर्ष 1998 में राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में तैयार किया गया था। इस अभियान के लक्ष्य निम्न प्रकार है–

- 6–14 वर्ष के आयुवर्ग के समस्त बच्चों को वर्ष 2005 तक स्कूलों, शिक्षा गारंटी योजना केन्द्र, ब्रिज पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करना।
- समस्त प्रकार के भेदभाव प्राथमिक शिक्षा से वर्ष 2007 तक और बुनियादी शिक्षा से वर्ष 2010 तक समाप्त करना।
- प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता पर बल देते हुए वर्ष 2010 तक सभी को शिक्षा मुहैया कराना।

उपरोक्त योजनाओं के अतिरिक्त केन्द्र सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को नई दिशा देने के लिए अनेक लघु एवं दीर्घ कालीन कार्यक्रमों का क्रियान्वयन, किया जिसमें मुख्य है– महिला समाख्या कार्यक्रम 1989, प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना आदि।

मां की पाठशाला : घूंघट में उजाला

शिक्षा गारंटी योजना एवं वैकल्पिक शिक्षा

शिक्षा गारंटी योजना सर्व शिक्षा अभियान का ही एक घटक है, जिसका उद्देश्य स्कूल नहीं जाने वाले बच्चों को बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत लाने का प्रयास है। इस योजना में दुर्गम क्षेत्र की बस्तियां जहां एक किलोमीटर के दायरे में औपचारिक शिक्षा के लिए कोई विद्यालय मौजूद न हो और 6–14 वर्ष आयुवर्ग के तकरीबन 15–25 बच्चे उपलब्ध हो, लाने का प्रयास है। पहाड़ी क्षेत्रों में केवल 10 बच्चों की उपस्थिति ही निर्धारित की गई है। इसके साथ–साथ समाज के वंचित वर्ग के बच्चे जैसे–बाल श्रमिक, सड़कों पर जीवन यापन करने वाले, विषम परिस्थितियों वाले बच्चे एवं प्रवासी बच्चे जिन की आयु 9 वर्ष से अधिक है, की वैकल्पिक शिक्षा का प्रावधान किया गया है। वर्ष 2005–06 के दौरान प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग के प्रयासों से सम्पूर्ण देश के समस्त 600 जिलों में योजनायें मंजूर कर लागू कर दी गई।

मध्याह्न भोजन व्यवस्था

प्राथमिक शिक्षा को पौष्टिक योजना से जोड़ने का दुनिया का सबसे बड़ा स्कूल भोजन कार्यक्रम जिसकी शुरूआत 15 अगस्त 1995 में हुई, तकरीबन 12 करोड़ बच्चों को लाभान्वित कर रहा है। वर्ष 2004 में इसके उद्देश्यों को संशोधित करते हुए निम्न प्रकार निर्धारित किया गया–

- कक्षा 1–5 तक की शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य कर दी गई जिसमें नामांकन, उपस्थिति, स्कूल न छोड़ना और उनमें अधिगम स्तर में सुधार लाना शामिल है।
- स्कूल स्तर में विद्यार्थियों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराते हुए उनके पौषणिक स्तर में सुधार लाना है।
- सूखा प्रभावित क्षेत्रों में गर्मी की छुट्टी के दिनों में भी प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के पौषणिक स्तर में सुधार लाना।
- इस योजना के अंतर्गत कक्षा 1–5 तक के सभी बच्चों को दोपहर के भोजन में 300 कैलोरी और 8–12 ग्राम प्रोटीन उपलब्ध कराने का प्रावधान है।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

अतिरिक्त व्यवस्था के सिद्धान्त पर आधारित, केन्द्र द्वारा संचालित जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरूआत वर्ष 1994 में की गई थी। इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन की इकाई जिला मानी गई, जिसका उद्देश्य सभी प्राथमिक शिक्षा प्रणाली में फिर से जान फूंकना और प्राथमिक शिक्षा के सार्वगीकरण का लक्ष्य पूरा करना था। इसका लक्ष्य सभी को शिक्षा दिलाने, बच्चों को स्कूल में बनाए रखने, शिक्षा के स्तर में सुधार और सामाजिक असमानता को कम करते हुए सहभागिता को बढ़ाना रहा है। यह कार्यक्रम विदेशी सहायता से चल रहा है, जो वर्तमान में लगभग 6938 करोड़ रुपये का है। वर्तमान समय में डी.पी.ई.पी. 9 राज्यों के 123 जिलों में चल रहा है। एक समय इसका दायरा 18 राज्यों के 273 जिलों तक व्यापक हो गया था, किंतु इसमें कमी आने के साथ अब फिर यह 123 जिलों में लागू है। इस योजना के अन्तर्गत अभी तक 160000 से अधिक स्कूल खोले जा चुके हैं जिसमें लगभग 84000 वैकल्पिक शिक्षण केन्द्रों की स्थापना हुई है। इन केन्द्रों में लगभग 3500000 बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। शिक्षण कार्य में 177000 अध्यापकों की नियुक्ति की गई तथा शिक्षा सम्बन्धी सहायता और प्रशिक्षण के लिए ब्लाक स्तर पर 3380 (वी.आर.सी) केन्द्रों की स्थापना की गई।

मूल्यांकन

आजादी के पश्चात् शिक्षा के महत्व स्पष्ट करने के लिए जिस क्रांतिकारी कदम को कोठारी आयोग (1964) के रूप में उठाया गया, उसने शिक्षा क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन लाने का प्रयास किया। जिसमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए उद्देश्यों का निर्धारण किया था। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1989) इन्हीं प्रयासों का परिणाम रही है। जिसके द्वारा सरकार ने विभिन्न प्रयासों के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव लाने का प्रयास किया। चाहे वह शिक्षण संस्थाओं में वृद्धि, बेहतर पर्यावरण, शत–प्रतिशत नामांकन, शिक्षकों की पर्याप्त संख्या, निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा आदि सभी आवश्यक क्षेत्रों में सुधार लाने का प्रयास किया किंतु ये सभी प्रयास नाकाफी साबित हुए। इसके परिणामों से प्राथमिक शिक्षा की प्रगति का ग्राफ असंतोषजनक बना हुआ है। इसका एक बड़ा कारण जनसंख्या में तेजी से हो रही वृद्धि जो लगातार संसाधनों की उपलब्धता पर भारी पड़ रही है। निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रावधानों के बावजूद लाखों बच्चे प्रतिवर्ष आठ वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा को पूरी करने में असमर्थ है। 86वें संवैधानिक संशोधन 2002 के जरिए शिक्षा प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार तो बन गई पर सरकारी स्कूलों का खालीपन, योग्य शिक्षकों के बावजूद भर नहीं पाया है। 'स्कूल चलो अभियान' जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम धरातल पर सफल नहीं हो पाये। यद्यपि शिक्षा के लिए जागरूकता बढ़ी है किंतु इस जागरूकता का लाभ निजी क्षेत्रों में संचालित स्कूलों को मिला जो मानकों के अनुकूल न होने पर भी कम योग्य अध्यापकों के सहारे महंगे शुल्क और बच्चों का अधिक से अधिक नामाकंन अपने पक्ष में करते जा रहे हैं। आज अभिभावक अपनी आय का एक बड़ा भाग इन पब्लिक स्कूलों की शिक्षा पद्धति पर खर्च करने को तैयार हैं बावजूद इसके की सरकारी स्कूलों में नाममात्र की फीस व प्रशिक्षित अध्यापकों के। इसका कारण प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में ही नजर आता है। जहां छात्र–छात्राओं को मूलभूत सुविधाओं के अभाव का सामना करना पड़ता है वहीं सरकारी नीतियों एवं उनके क्रियान्वयन में व्याप्त उदासीनता देखने को मिलती है। जैसे विद्यालय तो हैं परंतु विद्यार्थी नहीं, विद्यार्थी है किंतु विद्यालय जर्जर अवस्था में है। दोनों उपलब्ध हैं किंतु शिक्षकों का अभाव, और यदि ये तीनों स्थिति अनुकूल है तो यह देखने में आता है कि शिक्षक या तो सरकारी कार्यों से या निजी कार्यों से अनुपस्थित हैं। सरकार ने भी ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। आज शिक्षक बहुउद्देशीय कर्मी बन गया है, जो पढ़ाने के बजाए जनगणना, मकानगणना, मतदाता सूची, परिवारगणना, पल्स पोलियो अभियान, मध्याह्न भोजन व्यवस्था आदि कार्यों में सरकारी आदेशों पर व्यस्त रखा जाता है। वर्ष भर शिक्षक किसी न किसी कार्यों से जुड़े रहते हैं और जुड़े रहने का बहाना बनाकर अपने दायित्वों का निर्वहन करने में उदासीन हो जाते हैं। परिणाम प्राथमिक शिक्षा के प्रति विशेषकर सरकारी विद्यालय में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाने के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई देती। विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट भी शिक्षकों की ऐसी अनुपस्थिति की ओर संकेत करती है। प्राथमिक शिक्षा की दयनीय स्थिति का उदाहरण इस रूप में देखा जा सकता है कि प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ाने वाले शिक्षक–शिक्षिकाओं के बच्चे अपवाद स्वरूप ही सरकारी विद्यालय में पढ़ रहे हैं।

निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकारी प्रयासों में जो कमी बनी हुई है इसका कारण शिक्षा पर कम व्यय के चलते बना हुआ है। जिस दिन सरकार अपने सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करना आरम्भ कर देगी उस दिन महंगी शिक्षा के नाम पर ठगी कर रहे पब्लिक स्कूलों के बोरिया–बिस्तर बंधने शुरू हो जायेंगे। समाज में शिक्षा में आ रही असमानता को दूर करने के लिए सरकार को एक राष्ट्रीय नीति के साथ राष्ट्रीय पद्धति भी विकसित करनी होगी। जब देश में मंत्री से लेकर संतरी तक के बच्चे एक जैसी शिक्षा पद्धति की छत्रछाया में आएगे तब सही मायने में इंडिया विजन 2020 का मार्ग प्रशस्त होगा और भूमण्डलीकरण के कारण राष्ट्रीय विकास के लिए शिक्षा पर आ रही चुनौतियों का मुकाबला किया जा सकेगा। तब शिक्षा न केवल योग्यताओं और क्षमताओं को विकसित करने का माध्यम बनेगी बल्कि सामाजिक एकता, सांप्रदायिक सौहार्द एवं राष्ट्र के चहुंमुखी विकास का आधार बनेगी।

(लेखक राजनीति विज्ञान के प्रवक्ता हैं।)

भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रसार : दशा और दिशा

जितेन्द्र कुमार पाण्डेय

शिक्षा जीवन का संपूर्ण शास्त्र है। शिक्षा सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति का एक सामाजिक साधन है जिससे समाज अपने ही अस्तित्व को सुनिश्चित करता है। इसका उद्देश्य ज्ञान पिपासा जगाने के साथ व्यक्ति को संस्कारी, विचारवान और संयमी प्राणी बनाना है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन को तार्किक बनाती है और अच्छे–बुरे की समझ पैदा कर निष्पक्ष निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। इसका उद्देश्य एक स्वस्थ नागरिक का निर्माण करना है जो अपने दायित्वों का निर्वहन स्वतन्त्र रूप से कर सके।

भारत में शिक्षा और ज्ञान के महत्व को प्राचीन काल से ही समझा गया है और प्राचीन भारतीय शिक्षा पर धर्म और दर्शन का काफी प्रभाव रहा है, किन्तु वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था जो व्यवहारिकता, वैज्ञानिक ज्ञान और विकासपरक मूल्य के काफी करीब है, उसे आधुनिक शिक्षा की देन कहा जा सकता है।

भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रसार का श्रेय विदेशी ईसाई मिशनरियों, ब्रिटिश सरकार और प्रगतिशील भारतीयों को है। ईसाई मिशनरियों की मूल प्रेरणा थी ईसाई धर्म का प्रचार और इसके लिए उन्होंने हिन्दू धर्म के बहुदेववाद और विषमता को अपना निशाना बनाया। आधुनिक शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से इन्होंने ईसाई धर्म के एकेश्वरवाद और समानता का प्रचार–प्रसार किया, पर ईसाई धर्म से हिंदुओं को जोड़ने की उनकी इच्छा फलीभूत नहीं हो सकी।

इसके बाद भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रसार सबसे अधिक ब्रिटिश सरकार ने किया। ब्रिटेन द्वारा भारत को अपना उपनिवेश बनाने के बाद अपनी राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारतीयों को आधुनिक शिक्षा देने की आवश्यकता महसूस की। 1757 के प्लासी युद्ध के बाद अंग्रेजों ने तेजी से भारतीय भू–भाग विजित किए, जिसके प्रशासनिक देखरेख के लिए अंग्रेजी पढ़े–लिखे ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार लोगों की जरूरत थी। उधर भारत में अंग्रेजी व्यापार भी तेजी से बढ़ रहा था, भारतीय बाजार, अंग्रेजों को भारी मुनाफा देने में सक्षम थे, इसके लिए भी भारतीयों को आधुनिक शिक्षा दिए जाने की आवश्यकता थी ताकि भारतीयों का जीवनस्तर अंग्रेजी वस्तुओं को स्वीकार करना सीख जाए।

अंग्रेजी शिक्षा ने अपनी तमाम सीमाओं और विकृतियों के बावजूद सरकारी और व्यवसायिक कार्यालयों को किरानी दिए और नई विधि व्यवस्था में पारंगत वकील दिए। मैकाले का मानना था कि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ऐसे लोगों को तैयार करेगी जो रक्त और मांस से तो भारतीय होंगे पर सोच से अंग्रेज होंगे। प्रबुद्ध अंग्रेजों को ब्रिटिश संस्कृति दुनिया में सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक उदार नजर आती थी और इसके प्रचार के लिए आधुनिक शिक्षा अनिवार्य थी। ब्रिटिश शासकों का यह मानना कि आधुनिक शिक्षा ग्रहण करने के बाद भारत में एक भी मूर्तिपूजक नहीं बचेगा, इसी सोच को प्रतिबिंबित करती है।

आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा लागू करवाने में प्रगतिशील भारतीय राजाराम मोहन राय की भूमिका अविस्मरणीय है। उन्होंने पश्चिम के देशों में वैज्ञानिक और प्रजातांत्रिक विचारों के आधार के रूप में अंग्रेजी शिक्षा का स्वागत किया और परंपरागत शिक्षा को अंधविश्वास, डर और सत्तावाद का जन्मदाता मानकर इसकी आलोचना की। नई शिक्षा का मूल तत्व था प्रयोग और विवेक के आधार पर तथ्यों का मूल्यांकन करना। 1813 के चार्टर एक्ट में कंपनी ने शिक्षा के प्रति राजकीय उत्तरदायित्व को निभाते हुए हर साल शिक्षा के मद में एक लाख रुपये खर्च करने की व्यवस्था की। 1835 के घोषणा पत्र में लोकशिक्षा

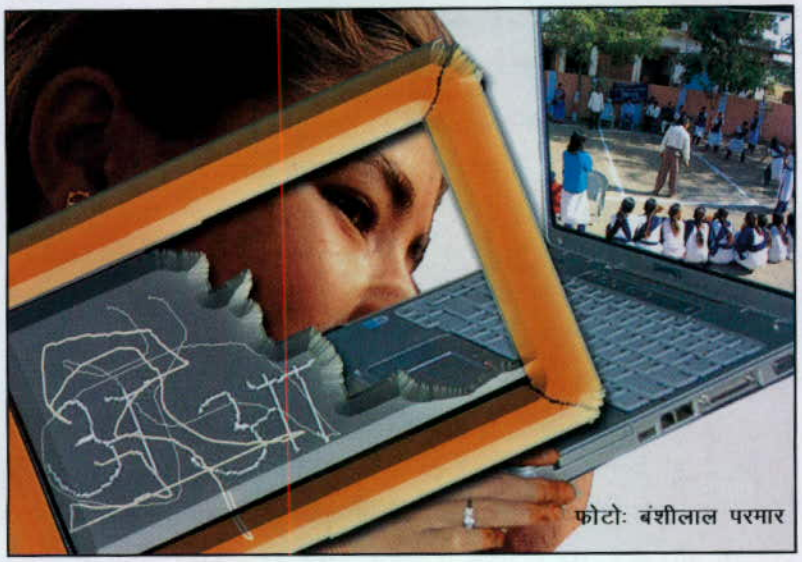

स्लेट से लेकर लेपटाप तक आधुनिक शिक्षा

की उपेक्षा करते हुए अंग्रेजी को स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा का माध्यम बनाया गया और अधोमुखी 'निस्यंदन के सिद्धान्त' में विश्वास व्यक्त किया गया, जिसके अनुसार शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को दी जाए और इस वर्ग से छन–छन कर शिक्षा का प्रभाव जनसाधारण तक पहुंच जाएगा।

भारत में शिक्षा के विकास के लिए 1854 में वुड्स डिस्पैच आया, जिसे भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा भी कहा जाता है। शिक्षा के माध्यम के बारे में डिस्पैच का निर्णय था कि कॉलेज स्तर पर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो, किन्तु माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी और भारतीय भाषा दोनों ही माध्यम बनें। इसने भारतीय भाषाओं की भी बात कही और 'अधोमुखी निस्यंदन सिद्धांत को त्याग दिया। परिणामस्वरूप 1857 में कलकत्ता, बंबई और मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। 1880 के बाद आधुनिक शिक्षा और तेजी से विकसित हुई। इस दौरान भारतीयों खासकर तिलक, गोखले आदि ने दक्कन एजुकेशन सोसाइटी के कार्यों को भलीभांति निभाया। लार्ड कर्जन के समय में, 1904 में भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया गया, जिसमें कॉलेज को विश्वविद्यालय से संबद्ध होने की शर्तों को कड़ा कर दिया गया और सरकार को विश्वविद्यालय संबंधी नियम बनाने की काफी शक्तियां प्रदान की गई। चूंकि भारत गुलाम था, इसलिए अंग्रेज भारतीयों की शिक्षा के प्रति उपेक्षित रवैया अपनाया करते थे। सौ साल से भी अधिक ब्रिटिश शासन के बाद भी 1911 में भारतीय आबादी के 94 प्रतिशत लोग निरक्षर थे और 1931 में 92 प्रतिशत लोग। जनसाधारण की निरक्षरता और अज्ञान के कारण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रगति अवरूद्ध रही।

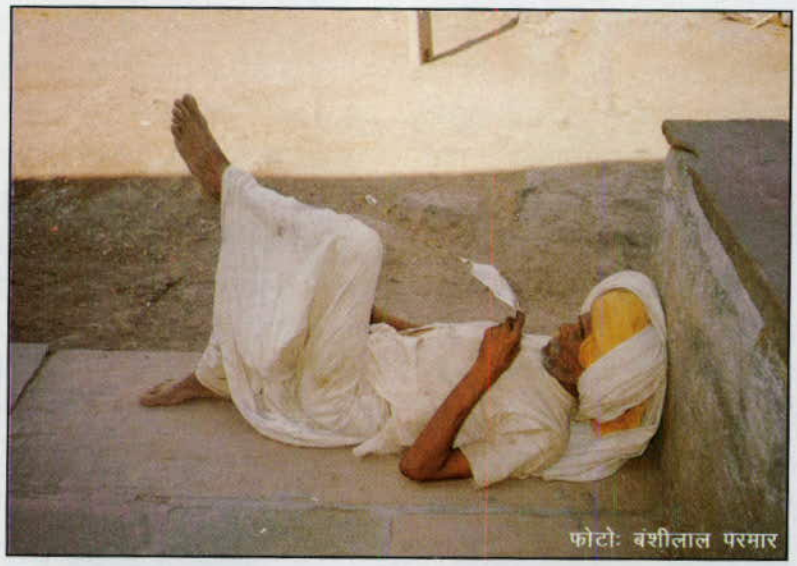

फुरसत के पल–थोड़ा पढ़ले चल

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के उद्देश्य में उल्लेखनीय परिवर्तन वांछनीय था और आवश्यक भी। 1948 के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा " देश में महान परिवर्तन आए है, अतः शिक्षा के संपूर्ण आधार में क्रांतिकारी परिवर्तन किया जाना चाहिए।" शिक्षा को मानवीय गौरव और प्रतिष्ठा का संरक्षक बनाने के लिए संवैधानिक प्रावधान भी किए गए। 1976 के संवैधानिक संशोधन द्वारा प्राथमिक शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया ताकि केन्द्र और राज्य शिक्षा की अपनी नई जिम्मेदारियों को पूरा कर सके। सन् 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा प्राथमिक शिक्षा को 6–14 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों के लिए मौलिक अधिकार बनाया गया। और एक नया अनुच्छेद 21 (ए) जोड़ा गया जिसके अन्तर्गत राज्य को 6–14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करानी होगी।

1988 की नई शिक्षा नीति के विकास लक्ष्यों में शिक्षा तथा स्वास्थ्य, समाज कल्याण और रोजगार कार्यक्रमों के बीच गतिशील तथा लाभप्रद संपर्क कायम करने पर भी खासतौर से जोर दिया गया। परिणामस्वरूप 1988–89 में स्कूली शिक्षा को पर्यावरण उन्मुख बनाने के लिए शैक्षिक कार्यक्रम योजना शुरू की गई। माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के व्यवसायीकरण की योजना शुरू की गई ताकि विद्यार्थियों को बिना उच्च शिक्षा प्राप्त किए रोजगार मिल सके। प्रतिभाशाली बच्चों के तीव्र विकास के सह शिक्षा वाले आवासीय–नवोदय विद्यालय खोले गए। शिक्षा के एक समान ढांचे के लिए तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए सभी राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में 10+2 प्रणाली लागू की गई। इसका असर भी दिखा और 2005 में भारत में नवोदय विद्यालयों की संख्या 513 थी और इसमें 1 लाख 68 हजार छात्र पढ़ रहे थे। इस समय भारत में 342 विश्वविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर की संस्थाएं हैं, जिनमें 18 केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं। इनमें प्रवेश लिए हुए छात्रों की कुल संख्या 99.54 लाख है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता 64.84 प्रतिशत है। इसी वर्ष सरकार ने सबको शिक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सर्व शिक्षा अभियान नामक एक नए कार्यक्रम की घोषणा की।

प्राथमिक शिक्षा से अधिक से अधिक बच्चों को जोड़ने के लिए सरकार 'दोपहर भोजन योजना' चला रही है, जिससे 12 करोड़ बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं और यह विश्व स्तर पर एक अनूठा कार्यक्रम है। शिक्षा की प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए भारत में शिक्षा से संबंधित शोध संस्थाएं अपनी रिपोर्ट समय–समय पर देती रहती है, पर अन्य चीजों की तरह भारत में शिक्षा पर भी

जमकर राजनीति होती है। सरकार के बदलने पर पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन लाने की कोशिश की जाती है जिससे छात्रों और अभिभावकों में पाठ्यक्रम को लेकर संशय की स्थिति बन जाती है। फिलहाल केन्द्र सरकार द्वारा पाठ्यक्रम में यौन शिक्षा को शामिल करने की वकालत की जा रही है। पक्ष–विपक्ष के तर्क–वितर्क के कारण इस मुद्दे पर निष्पक्ष राय कायम करने में देरी हो रही है। बच्चों में यौन–शोषण की घटनाएं जिस तरह से बढ़ रही है, उन्हें इससे बचाने के लिए यौन शिक्षा दिए जाने की आवश्यकता है किन्तु अस्वस्थकारी प्रवृतियां न फैले हमें इस पर अधिक से अधिक ध्यान देना होगा।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में सरकार ने काफी कुछ किया है, पर अभी बहुत काम किया जाना बाकी है। पिछले 60 वर्षों में शिक्षा के स्तर में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। किन्तु सापेक्षिक दृष्टि से देखने पर पता लगता है कि देश में साक्षरता का प्रतिशत अभी भी बहुत कम है। पुरुष और स्त्री जनसंख्या में साक्षरता के प्रतिशत में भी अन्तर है। जबकि यह सफल उदाहरण है कि जिन देशों ने जनसंख्या नियंत्रण में सफलता पायी है वहां स्त्री शिक्षा का प्रतिशत अधिक रहा है। स्वतंत्रता के साठ बसंत पूरे होने के बाद भी हम गांधी जी के सार्वभौमिक शिक्षा और साक्षरता का जो गुणात्मक उद्देश्य था उसको अमली जामा नहीं पहना सके हैं। इसी असफलता की वजह से हमारी आर्थिक विकास की प्रक्रिया सुदृढ़ नहीं हो पाई है, असमानता और गरीबी आज भी विद्यमान है।

इस असफलता का सीधा संबंध जनसंख्या के लगातार तीव्र गति से बढ़ते रहने से है। आर्थिक संवृद्धि एवं समावेशी विकास से भी शिक्षा का गहन संबंध है। जब तक हम शिक्षा के क्षेत्र में पूर्ण प्रगति नहीं कर लेते तब तक हमारा किसी भी क्षेत्र में संपूर्ण विकास असंभव है। तेजी से संवृद्ध होती अर्थव्यवस्था, सुधरते–जीवनस्तर और बदलते नैतिक मूल्यों का अधिकतम लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब अधिकतम लोग शिक्षित हो। आज हमें ऐसी मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता है जो भारतीय समस्याओं के लिए भारतीय समाधान दे सके। ताकि हम एक समतामूलक, न्यायपूर्ण एवं सभ्य समाज का निर्माण कर सकें। आज हमें एक ऐसी प्रयोजनमूलक शिक्षा की आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य एक तरफ तो विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में नए अन्वेषणों और अवसरों का सृजन करना तो दूसरी तरफ मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं अपनी नैतिक परम्परा को भी संजोए रखना है।

सर्व शिक्षा अभियान

सभी को बुनियादी शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए एक लम्बी अवधि के संकल्प "सर्व शिक्षा अभियान" की घोषणा की। यह कार्यक्रम देश के सभी राज्यों में लागू किया गया। इस कार्यक्रम का लक्ष्य प्राथमिक स्तर 6–11 वर्ष की आयु तथा उच्च प्राथमिक स्तर (11 से 14 वर्ष की आयु) पर शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारना है।

सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के माध्यम से विकेन्द्रित नियोजन, सामुदायिक भागीदारी, शिक्षा शास्त्रीय नवीकरण, बच्चों की आवश्यकता के अनुरूप कक्षाओं के आयोजन आदि के क्षेत्र में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के सफल अनुभवों का प्रसार संपूर्ण बुनियादी शिक्षा पर करने का लक्ष्य रखा गया है।

सर्व शिक्षा अभियान के मौलिक उद्देश्य

- सभी बच्चे किसी न किसी प्रकार के स्कूल में वर्ष 2003 तक दाखिल हो सकें।
- वर्ष 2007 तक सभी बच्चे पांच वर्ष की प्राथमिक शिक्षा विद्यालय में पूरी कर सकें।
- सभी बच्चे वर्ष 2007 तक विद्यालय में आठ वर्ष की बुनियादी शिक्षा पूरी कर सकें।
- लड़कियों और लड़कों तथा सभी सामाजिक स्कूलों जैसे – अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की विद्यालयी शिक्षा के बीच के अन्तर को प्राथमिक स्तर पर वर्ष 2007 तथा बुनियादी स्तर पर वर्ष 2010 तक समाप्त किया जा सकेगा।
- जीवनोपयोगी शिक्षा पर जोर देते हुए संतोषजनक एवं गुणात्मक शिक्षा प्रदान की जाए।

सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के लिए धन आवंटन नौवीं योजना में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच 85:15 की सहभागिता प्रबन्धन की व्यवस्था थी, 10वीं योजना में सहभागिता 75:25 की, जबकि वर्तमान में चल रही ग्यारहवीं योजना में सहभागिता प्रबन्धन केन्द्र एवं राज्य के बीच 50:50 कर दी गयी है।

ज्ञातव्य हो कि जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के सफल अनुभव से प्रभावित होकर यूरोपीय संघ ने "सर्व शिक्षा अभियान" कार्यक्रम के लिए नवम्बर 2001 में भारत सरकार के साथ सहयोग करने का एक समझौता किया है। यूरोपीय संघ ने इस महत्वाकांक्षी योजना के लिए 20 करोड़ यूरो (1000 करोड़ रुपए) इसे सात वर्ष में क्रियान्वित करने के लिए देने का वचन दिया है। यूरोपीय संघ के अनुदान देने का मुख्य उद्देश्य सभी को बुनियादी शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार के प्रयासों को मजबूत करना है। यह अनुदान क्षेत्रीय सहायता के रूप में है जिसके अन्तर्गत यूरोपीय संघ के संसाधनों को भारत सरकार अपनी प्राथमिकताओं के अनुसार खर्च करेगा।

(लेखक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोध छात्र हैं।)

प्राथमिक शिक्षा और सरकारी कार्य योजना

अखिलेश आर्येन्दु

भारत जनसंख्या के दृष्टिकोण से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है। वहीं पर शिक्षा के मामले में भी सबसे बड़ी अशिक्षित जनसंख्या भी यहीं निवास करती है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश ने जहां आर्थिक विकास किया वहीं शिक्षा के मामले में भी बहुत प्रगति की। जिन गांवों में एक भी विद्यालय नहीं थे, और इने–गिने ही शिक्षित व्यक्ति थे, वहां पर विद्यालय खुले और लोगों में शिक्षा के प्रति जागृति आई। लेकिन जितनी तेजी से विकास होना चाहिए था या जितनी गति से साक्षरता दर बढ़नी चाहिए थी, नहीं बढ़ी। इसके कई कारण थे। इसमें बेरोजगारी और निर्धनता प्रमुख थी। इसको देखते हुए केन्द्र और राज्य सरकारों ने अपने स्तर पर सबको शिक्षित और साक्षर बनाने के लिए कई प्रकार के प्रयास किए। अनेक गैर सरकारी या अर्धसरकारी योजनाएं भी काम कर रही थी। इससे जहां लोग बहुत बड़ी संख्या में अशिक्षित और निरक्षर थे, वहां पर उन्हें यह समझ में आने लगा कि बिना पढ़े–पढ़ाए न उनका कल्याण सम्भव है और न ही परिवार तथा समाज की उन्नति हो सकती है। यह भी समझ में आने लगा कि शिक्षा वह अंधकार मिटाने का सशक्त माध्यम है जिससे व्यक्ति, परिवार और समाज का चहुंमुखी विकास होता है।

भारत के संविधान में चौदह साल तक की उम्र के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य और बिना शुल्क की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है। इस दिशा में सन् 2002 में 86वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इससे देश के हर बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने का मूलभूत अधिकार प्राप्त हो गया। इससे शिक्षा के प्रति जहां लोगों में नई चेतना जगी, वहीं पर राज्यों को हर बच्चे को शिक्षा देना अनिवार्य हो गया। इस दिशा में केरल, तमिलनाडु और दिल्ली ने काफी प्रगति की। आज प्राथमिक शिक्षा के लिए देश में नई जागृति दिखाई दे रही है। इसी के तहत 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की शुरूआत हुई। इस मिशन ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। असमानताएं कई स्तरों पर दूर हुईं। शिक्षा का हर स्तर पर विस्तार हुआ। 1990 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने पूरे देश को एक सूत्र में बांधा। इसका परिणाम था कि 1999 में जो साक्षरता दर 52.29 प्रतिशत थी वह बढ़कर 2001 में पहली बार 64.84 प्रतिशत तक पहुंच गई।

भारत सरकार ने 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (पीएनई) का प्रारम्भ किया। इस नीति को लागू करने के छः वर्षों के बाद 1992 में इसकी समीक्षा की गई। इसमें यह सुझाव आया कि जब तक बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में ठोस कार्य–योजना नहीं बनाई जाएगी, तब तक देश के हर बच्चे को साक्षर या अक्षर ज्ञान नहीं कराया जा सकता है। 1990 में विश्व घोषणा (ईएफए) प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में लागू की गई। इसमें लैंगिक समानता, प्रौढ़ शिक्षा के साथ–साथ बालकों की देख–रेख पर विशेष ध्यान दिया गया। यह उन उपेक्षित बच्चों के लिए वरदान, साबित हुआ जो धनाभाव, उपेक्षा और अन्य कारणों से हर स्तर पर पिछड़ जाते थे। गांव के बच्चों के लिए यह आनंदोत्सव मनाने जैसा था। खासकर पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित बच्चों के लिए बहुत की कारगर सिद्ध हुआ। केन्द्र और राज्य सरकारों ने गांव के बच्चों के लिए विशेष धन आवंटित किया।

सरकार का प्रयास – गरीब बच्चों को मिले आवास

प्राथमिक शिक्षा को आंदोलन का रूप सबसे पहले दसवीं पंचवर्षीय योजना में दिया गया। इसके लिए केन्द्र ने 28750 करोड़ रुपए का आवंटन किया। इसी तरह वार्षिक योजना 2002–03 के लिए केन्द्र ने 4667 करोड़ रुपए दिए। इससे सबसे अधिक गांव के बेसहारा और अशिक्षित बच्चों को लाभ

पहुंचा। क्योंकि धनाभाव के कारण गांव के बच्चे प्राथमिक शिक्षा से वंचित थे। फिर 2003–04 में केन्द्र ने आवंटित धन राशि को बढ़ाकर 5217 करोड़ रुपए कर दिया। इससे देश के हर गांव में स्थित प्राथमिक विद्यालयों की हालत में सुधार आया। जब केन्द्र में यूपीए की सरकार आई तो 6–14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए अभूतपूर्व कदम उठाए। इससे बुनियादी शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने में बहुत सहायता मिली। सरकार ने ग्रामीण बच्चों में प्राथमिक शिक्षा के प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए पोषाहार के नए कार्यक्रम को और अधिक बढ़ावा दिया। इसके लिए सरकार ने सभी केन्द्रीय करों पर 2 प्रतिशत का उपकर लगाया। इसे और भी कारगर बनाने के लिए एन सी एम पी से सम्बन्धित कार्यक्रमों के लिए कई प्रावधानों में फेरबदल किया।

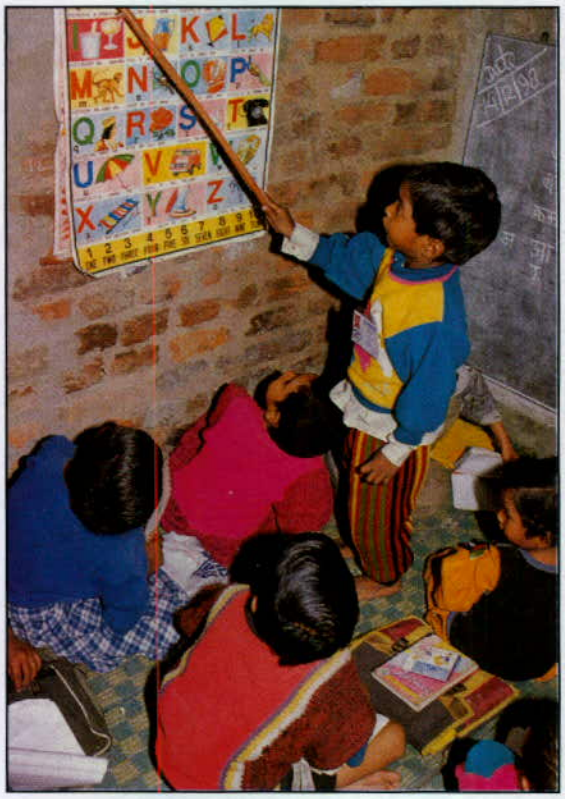

सर्व शिक्षा अभियान – पढ़ाई पर ध्यान

एसएसए के लिए सरकार ने 200 करोड़ रुपये का प्रावधान किया। मध्याह्न भोजन कार्यक्रम के लिए 1675 करोड़ रुपए के प्रावधान में 1232 करोड़ रुपए और जोड़ गए। इस तरह अनेक कार्यक्रमों को एक साथ मिलाकर चलाने से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। सन् 2004–05 की वार्षिक योजना में 5750 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया। लेकिन यह राशि साक्षरता दर को बढ़ाने के लिए पर्याप्त नहीं थी। इसलिए केन्द्र सरकार ने इसमें 12 करोड़ रुपए से अधिक राशि और आवंटित की। इसी तरह सन् 2005–06 की वार्षिक योजना में सरकार ने दस करोड़ रुपए और जोड़े। इस तरह प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र और राज्य सरकारों की आपसी भागीदारी से देश में एक नई क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।

केन्द्र सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम चलाकर गांवों में उन बच्चों को भी पढ़ने का अवसर दिया जो स्कूल जाने में असमर्थ थे। इनमें वे भी शिक्षित हुए जो पढ़ने–लिखने की उम्र में पढ़ नहीं पाए थे। इससे गांवों में एक नई रोशनी आई। बच्चे, बूढ़े और महिलाओं को अक्षर–ज्ञान का एक बेहतरीन अवसर प्राप्त हुआ।

एक आंकड़े के अनुसार देश में सब को शिक्षित करने के लिए आठ लाख विद्यालयों की आवश्यकता है और इन आठ लाख विद्यालयों में कम से कम सोलह लाख अध्यापकों की आवश्यकता है। इन आठ लाख विद्यालयों में छः लाख विद्यालय गांवों में होने चाहिए। जाहिर है केन्द्र और राज्यों की भागीदारी से यह असम्भव से दिखने वाला कार्य अब सम्भव दिखाई पड़ने लगा है। केन्द्र सरकार अनेक शिक्षा योजनाओं के माध्यम से गांव के सभी बच्चों को शिक्षित बनाने का कार्य शुरू कर चुकी है। इसमें जो राज्य पूरे मनोयोग से हाथ बंटा रहे हैं, वहां के सारे बच्चे शिक्षित हो चुके हैं। और जिन राज्यों ने केन्द्र के द्वारा आवंटित धन का ठीक उपयोग नहीं, किया, वहां आज भी गांवों में अशिक्षा का साम्राज्य फैला हुआ है। सबसे ताज्जुब की बात यह है कि देश के ऐसे अनेक राज्य हैं, जो आर्थिक रूप से समृद्ध माने जाते हैं, लेकिन शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में आज भी बहुत पीछे हैं, ऐसे राज्यों में हरियाणा, महाराष्ट्र और तमिलनाडु प्रमुख है। लेकिन आर्थिक रूप से अत्यंत समृद्ध न होते हुए भी मध्य प्रदेश और केरल जैसे राज्य प्राथमिक शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में बहुत आगे निकल चुके हैं। मतलब इन राज्यों ने केन्द्र के साथ पूरी भागीदारी ही नहीं की, बल्कि केन्द्र द्वारा आवंटित धन का पूरा इस्तेमाल तो किया ही, अपने स्तर पर भी अनेक योजनाओं के माध्यम से भी कार्य किया। गांवों में शिक्षा का अलख जगाने के लिए जैसी योजना और कार्य पद्धति मध्य प्रदेश और केरल ने अपनाई वह देश के दूसरे राज्यों के लिए एक मिसाल ही है। मध्य प्रदेश में रात्रि कालीन कक्षाएं चलाकर उन ग्रामीण बच्चों को भी शिक्षा दी गई और दी जा रही है जो अत्यंत निर्धन परिवार के होने के कारण दिन भर श्रम करते हैं या खेती के कार्य में लगे रहते हैं। लेकिन रात्रि में पढ़ने के लिए राज्य प्राथमिक शिक्षा योजना के तहत चलने वाली कक्षाओं में पढ़ते हैं। मतलब जहां चाह वहां राह की कहावत यहां पूरी तरह चरितार्थ होती दिखाई पड़ रही है।

गांवों के पिछड़ेपन की एक महत्वपूर्ण वजह गांवों में शिक्षा के विकास का न होना भी है। इसलिए चतुर और धूर्त इनका (ग्रामीणों) शोषण भी वर्षों से करते आ रहें है। इसे ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने सर्वसुलभ शिक्षा उपलब्ध कराने की महत्वपूर्ण योजनाएं प्रारम्भ कीं। जितना धन केन्द्र सरकार गांवों को रोशन करने के लिए

मुहैया करा रही है, यदि उसका ठीक से उपयोग हो जाए तो गांव की तस्वीर बदल सकती है। गांवों में सरकारी विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को केवल शिक्षा ही मुफ्त में नहीं उपलब्ध कराई जा रही है, बल्कि उनके लिए पढ़ने–लिखने की सारी सामग्री भी उपलब्ध कराई जा रही है। देश के आदिवासी क्षेत्रों में केन्द्र और राज्य सरकारों की सहभागिता से बड़े स्तर पर प्राथमिक विद्यालयों को खोला जा रहा है। वे वनवासी बच्चे जो कभी विद्यालय शब्द का नाम तक नहीं सुने थे, वे अब पढ़ाई करने के लिए खुशी–खुशी वहां जाते हैं। इसी तरह गांव के अशिक्षित वनवासी भी आगनवाड़ी केन्द्रों पर जिसमें स्त्री–पुरुष दोनों सम्मिलित हैं अक्षर ज्ञान के लिए बड़ी संख्या में आते हैं। इस तरह सरकार की सबको शिक्षित करने की नीति खूब फूल–फल रही है।

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित पत्रक 'एजूकेशन फार आल–द इण्डियन सीन' (दिसम्बर 1993) के अनुसार जहां भारत वर्ष की प्राथमिक शिक्षा प्रणाली ने विश्व की सबसे बड़ी व्यवस्था का दर्जा प्राप्त कर लिया है, वहां विद्यालय से बाहर पाये जाने वाले बच्चों, (पूरे विश्व का 22 प्रतिशत) तथा प्रौढ़ निरक्षरों (पूरे विश्व का 30 प्रतिशत) की एक बड़ी संख्या है। इसे मद्देनजर रखते हुए भारत सरकार में जो योजनाएं चलाई उससे बच्चों और प्रौढ़ निरक्षरों की बढ़ती संख्या में निश्चित रूप से लगाम लगी है। सरकार ने बेसिक शिक्षा को प्राथमिकता के तौर पर लेकर जो योजनाएं नव साक्षरों के लिए पिछले दस वर्षों में बनाईं हैं, वे सफलता के साथ आगे बढ़ रहीं हैं। इसके बावजूद इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा दिए जाने के बावजूद गांवों के विकास के लिए बड़े स्तर पर कार्य योजना बनाने की आवश्यकता है। जितनी और जैसी शिक्षा एक बच्चे या प्रौढ़ को चाहिए, उतनी और वैसी शिक्षा की व्यवस्था हुए बिना समग्र ग्रामीण विकास हर स्तर पर नहीं हो पाएगा। अशिक्षितों को इस तरह की शिक्षा दी जानी चाहिए कि उसे किसी भी स्तर पर दूसरों का सहारा नहीं लेना पड़े। देश के अधिकांश गांवों में आज भी बेरोजगारी, कुपोषण, शोषण, गरीबी, असमानता और दूसरी अनेक बुराइयां बड़े पैमाने पर व्याप्त हैं। इससे मुक्ति पाने के लिए ऐसी शिक्षा चाहिए कि हर कोई हर स्तर पर जागरूक बन सके। जिस तरह से जनसंख्या वृद्धि हो रही है, उसे देखते हुए केन्द्र और राज्य सरकारों को प्राथमिक शिक्षा प्रणाली और योजनाओं पर नए सिरे से विचार करना चाहिए। इससे आवंटित धन का पूरा उपयोग हो सकेगा और गांवों से शहरों की ओर हो रहे पलायन पर भी रोक लग सकेगी। अर्थशास्त्रियों के अनुसार गांवों में विकास का स्तर तेजी से न बढ़ने का कारण अशिक्षा के अलावा परम्परागत सोच भी है। यह सोच गांवों के विकास को हर स्तर पर बाधित करती है। इस पर भी केन्द्र और राज्य सरकारों को सोचना चाहिए। महज बुनियादी शिक्षा और अक्षर ज्ञान हो जाने से गांवों का हर स्तर पर विकास सम्भव नहीं है। शिक्षा पर किए जाने वाले खर्च का सही उपयोग तो होना ही चाहिए, साथ में जागरूकता लाने के काम को भी प्राथमिकता के तौर पर लिए जाने की आवश्यकता है।

गांव में आज भी 95 प्रतिशत लोग कृषि पर आश्रित हैं। इसे ध्यान में लाकर ही सरकार को शिक्षा की योजनाएं बनानी चाहिए। तभी सरकार द्वारा आवंटित धन का उचित उपयोग हो सकता है। कृषि संस्कृति की अपनी अलग पहचान और मूल्य हैं। हर स्तर पर यह शहरों से भिन्न है। यह सारी बाते शिक्षा से जुड़ी हुई हैं। बच्चों को किस तरह से प्राथमिक शिक्षा देनी चाहिए, इस पर ध्यान देकर ही देश के हर बच्चे को साक्षर और जागरूक बनाया जा सकता है। इसी तरह प्रौढ़ और महिलाओं के विषय में भी कार्य योजना बनाई जानी चाहिए। गांव का विकास तभी होगा जब सभी आयु वर्ग के लोग पूरी तरह शिक्षित और जागरूक होंगे। यह बात केवल देश के अर्थशास्त्री ही नहीं कह रहें हैं, बल्कि विदेश के कृषि विशेषज्ञ भी कह रहें हैं जो वर्षों से भारत के गांवों पर शोध कर रहें है।

(लेखक लोक संस्कृति के विशेषज्ञ और साहित्यकार हैं।)

ई–मेल : akhelesh.aryendu@gmail.com

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। **कुरुक्षेत्र** में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, **कुरुक्षेत्र** कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

पूर्ण साक्षरता के लिए वरदान : मिड-डे मील कार्यक्रम

बैजनाथ पाण्डेय

भारतीय ऋषि अविद्या एवं अशिक्षा को मृत्यु तुल्य मानते हैं। यही नहीं 'ज्ञानम् तृतीयम् मनुजस्य नेत्रम्' वैदिक काल से ही शिक्षा को ही वह प्रकाश माना गया है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाशित करने की सामर्थ्य रखता है। इसलिए विद्वानों ने शिक्षा को तीसरा नेत्र कहा है। शिक्षा वस्तुतः वह प्रक्रिया है जिससे मनुष्य बेहतर मनुष्य बनता है और अपनी इस दुनिया को और बेहतर दुनिया बनाने का संकल्प और कौशल अर्जित करता है। शिक्षा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षा से व्यक्ति में आत्मनिर्भरता, आत्मिक ऊर्जा और अपने अस्तित्व का एहसास होता है। शिक्षा के इसी महत्व को स्वीकार कर पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य रखा गया है। पर आज भी भारत की स्थिति भयावह है। यूएनडीपी की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 3 करोड़ 50 लाख बच्चे अभी भी स्कूलों से बाहर हैं जिनमें दो तिहाई लड़कियां हैं। विश्व में जितने निरक्षर हैं उनके आधे भारत में हैं।

आजादी के बाद से ही भारत पूर्ण साक्षरता के लिए प्रयासरत रहा है लेकिन अब तक का सबसे महत्वाकांक्षी एवं प्रभावशाली प्रयास है **'मिड–डे मील कार्यक्रम'**। यही नहीं मध्याह्न का भोजन कार्यक्रम विश्व का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। प्रारम्भिक स्कूल के बच्चों को पोषण उपलब्ध कराने के लिए मध्याह्न का भोजन कार्यक्रम एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है। सरकारी, स्थानीय निकायों और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में प्रारम्भिक स्तर के 6–14 वर्ष तक के बच्चों का स्कूलों में दाखिला बढ़ाने और उन्हें पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करने के अलावा इस कार्यक्रम का उद्देश्य उनके पोषाहार के स्तर में सुधार करना भी है। इस समय 12 करोड़ बच्चों को इस योजना से लाभ पहुंच रहा है।

मध्याह्न भोजन का जायजा लेते हुए अधिकारीगण

मिड–डे मील कार्यक्रम का शुभारंभ 15 अगस्त 1995 को हुआ। लेकिन वर्ष 2001 तक कुछ एक राज्यों को छोड़ सिर्फ 100 ग्राम अनाज प्रति छात्र प्रति दिन के दर से दिया जाता रहा, लेकिन 28 नवम्बर 2001 को सुप्रीम कोर्ट ने एक फैसला सुनाया जिसमें सभी राज्यों को पका पकाया मध्याह्न भोजन देने की बात कही गयी। आज लगभग सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में पका पकाया मध्याह्न भोजन कार्यक्रम चल रहा है। इस कार्यक्रम के लिए अनाज की व्यवस्था राज्य सरकार को एफसीआई मुफ्त करता है एवं भोजन को पकाने तथा गुणवत्ता निर्धारण के लिए 2 रुपये प्रति छात्र कन्वर्जन मूल्य का मानक रखा गया है जिसमें से एक रुपये की सहायता मानव संसाधन विकास मंत्रालय करता है। गुणवत्ता के निर्धारण के लिए सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर एक प्राथमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पोषाहार कार्यक्रम पर एक विशेषज्ञ दल का गठन भी किया गया है। विशेषज्ञ दल न्यूनतम गुणवत्ता के मानक को परिभाषित करता है, गुणवत्ता का नवीनीकरण करता है, कार्यक्रम संचालन एवं प्रबन्धन तथा कार्यक्रम की प्रभावशीलता का पता लगाता है। मिड–डे मील कार्यक्रम की आवश्यक गुणवत्ता के लिए निम्न मानक की सिफारिश की गयी है:

- वर्ष भर बच्चों की रुचि के अनुसार पका–पकाया पोषण युक्त भोजन की व्यवस्था।
- भोजन में माइक्रोन्यूट्रियेन्ट सप्लीमेन्ट का होना।
- प्रत्येक स्कूल में कम से कम भोजन पकाने के लिए प्रशिक्षित एक महिला स्टाफ एवं एक सहायिका की नियुक्ति करना।

- भोजन पकाने के लिए पानी तथा बच्चों के खाने के लिए बर्तन की व्यवस्था।
- प्रत्येक स्कूल में किचेन शेड एवं भण्डारण की व्यवस्था का होना।
- समय से अनाज एवं अन्य आवश्यक सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- प्रभावशाली संचालन एवं प्रबन्धन तथा गुणवत्ता जांच की व्यवस्था करना।
- सामाजिक भेद–भाव को खत्म करना।
- स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम का आयोजन करना।

इस योजना के शानदार परिणाम आ रहे हैं। न केवल दाखिला लेने वाले बच्चों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है बल्कि बीच में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों की संख्या भी कम हुई है। वर्ष 2001 में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या 3 करोड़ 60 लाख थी। वित्तमंत्री के बजट भाषण के अनुसार वर्ष 2005 में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या घटकर एक करोड़ रह गयी है। इसके बावजूद इस योजना में कुछ व्यावहारिक विसंगतियां हैं जिन्हें दूर किये बिना हम उस सपने को साकार नहीं बना पायेंगे जिसे सोच कर हम अरबों रुपये खर्च कर रहे हैं। निम्न कठिनाइयां हैं जिन्हें दूर करना नितांत ही आवश्यक है।

- मिड–डे मील कार्यक्रम के संचालन का पूरा दायित्व ग्राम प्रधान को दिया गया है। ग्राम प्रधान को ही सरकारी राशन की दुकान से अनाज लेना होता है। कनवर्जन मूल्य ग्राम प्रधान के खाते में आता है। इसलिए रोज अनाज, लकड़ी, तेल, दाल, सब्जी इत्यादि स्कूल तक पहुंचाने की जिम्मेदारी ग्राम प्रधान की होती है। ग्राम प्रधान जन प्रतिनिधि होता है न कि सरकारी नौकर उसका अपना व्यक्तिगत जीवन तथा गांव की समस्याएं होती हैं। इस कारण कभी–कभी भोजन सामग्री समय से स्कूल तक नहीं पहुंचती और कार्यक्रम बाधित हो जाता है। बच्चे जानतें हैं कि भोजन स्कूल में मिलेगा ही और भोजन नहीं मिलता तब स्कूल के प्रधानाध्यापक को बच्चों को खाने के लिए घर जाने की छुट्टी देनी होती है। एक बार बच्चे घर चले जाते हैं तो उनमें से मात्र 10 प्रतिशत ही लौट कर आते हैं। अतः इन सारी व्यवस्था के लिए एक सरकारी कर्मचारी की नियुक्ति होनी चाहिए जो भोजन बनाने की सारी सामग्री स्कूल तक समय से पहुंचाये।
- भोजन पकाने के लिए कम से कम एक प्रशिक्षित महिला एवं एक सहायिका की सिफारिश की गयी है। लेकिन सच्चाई यह है कि अधिकतर स्कूलों में मात्र एक खाना बनाने वाली महिला के सहारे ही यह कार्यक्रम चल रहा है। वह सहयोग बच्चों से लेती है। यही नहीं सच तो यह है कि मीनु का सही ढंग से पालन ही संभव नहीं है क्योंकि अकेले वह न तो सभी बच्चों के लिए रोटी बना सकती है और न ही पूड़ी। नतीजा यह होता है कि रोज केवल खिचड़ी ही पकती है।
- 'कनवर्जन चार्ज' कभी भी ग्राम प्रधान के खाते में समय से नहीं आता। इस स्थिति में ग्राम प्रधान को एक बहाना मिल जाता है और वह जितना कम से कम खर्च हो सके करता है। उस स्थिति में गुणवत्ता की बात करना एक कोरी कल्पना ही होगी।
- सरकारी राशन की दुकानों पर मिड–डे मील के लिए जो अनाज आता है उस बोरी पर एमडीएम का निशान बना होता है जिसे कोटेदार एवं ग्राम प्रधान मिलकर बेच देते हैं और अन्त्योदय वाले अनाज को स्कूलों में पहुंचाते हैं। अभिभावकों को यह बात पता न होने के कारण वह इसका विरोध नहीं कर पाते।
- भोजन की गुणवत्ता का निर्धारण एवं जांच के लिए एनपीएनएसपी का गठन किया गया है फिर भी धड़ल्ले से स्कूलों में केवल खिचड़ी ही पक रही है और उसमें भी 12 किलो ग्राम चावल में एक किलोग्राम दाल और हल्दी–नमक ही होता है जिसे देखने वाला कोई नहीं है।
- शायद ही किसी स्कूल में बच्चों के खाने के लिए थाली एवं गिलास की व्यवस्था हो। नतीजा जो अपने घर से थाली नहीं ला पाते उन्हें कागज के पन्ने में जमीन पर बैठकर खाना पड़ता है और खाते वक्त किसी को प्यास लग गयी तो नल पर दौड़ते हुए जाना पड़ता है।

इन विसंगतियों के बावजूद इस कार्यक्रम के इतने अच्छे परिणाम सामने आ रहे हैं। वर्ष 2001 में जहां 3 करोड़ 60 लाख बच्चे स्कूल से दूर थे वर्ष 2005 में मात्र एक करोड़ रह गये हैं। लेकिन इस कार्यक्रम की इन विसंगतियों को दूर किये बगैर हम उस सपने को साकार नहीं कर पायेंगे जिसे सोच कर हमने इस कार्यक्रम की शुरूआत की थी।

(लेखक संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में शिक्षा शास्त्र विभाग के प्राध्यापक हैं।)

राजस्थान में शिक्षा का परिदृश्य

डॉ. ऋतु सारस्वत

यह एक सर्वविदित सत्य है कि शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी होती है। शिक्षा का संबंध सिर्फ साक्षरता से ही नहीं है बल्कि शिक्षा चेतना और उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करने वाला औजार भी है। शिक्षा को एक मापक या पैमाना के तौर पर देखा जाता है जिसके आधार पर व्यक्ति, राज्य या देश का मूल्यांकन किया जाता है यदि इस मूल्यांकन के दृष्टिकोण से हम 'राजस्थान' में साक्षरता की वर्तमान स्थिति को देखें तो पायेंगे कि शनैः शनैः ही सही साक्षरता की दिशा में राज्य ने प्रगति की है।

राजस्थान राज्य के निर्माण के समय साक्षरता का औसत लगभग 9 प्रतिशत था जो कि वर्ष 1981 में बढ़कर 24.38 प्रतिशत तथा 1991 में 38.55 प्रतिशत हो गया। 2001 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में वर्तमान साक्षरता दर 61.03 प्रतिशत है।

राजस्थान में साक्षरता की दर में बढ़ोत्तरी एक सकारात्मक दृष्टि की ओर संकेत करती है परन्तु यह अन्य राज्यों की अपेक्षाकृत कम है। राजस्थान में ही, विभिन्न जिलों में साक्षरता की दर में काफी अन्तर है। 2001 की जनगणना के अनुसार साक्षरता की दर कोटा जिले में सर्वोच्च रही वहीं यह बांसवाड़ा जिले में न्यूनतम रही।

तालिका (1.2) से स्पष्ट है कि 32 जिलों में से 18 जिले ऐसे हैं जहां का साक्षरता प्रतिशत 60 से नीचे है। 1991 की तुलना में 2001 में, बूंदी, झालावाड़, बांसवाड़ा एवं बीकानेर का प्रदर्शन (साक्षरता के संबंध में) हनुमानगढ़, अजमेर एवं जोधपुर जिलों की अपेक्षाकृत कहीं अधिक बेहतर है।

तालिका 1.1 राजस्थान में साक्षरता दर

(प्रतिशत में)

वर्ष	राजस्थान			भारत		
	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	कुल
1951	13.9	2.51	8.02	24.68	7.88	16.67
1961	23.71	5.84	15.21	34.45	12.95	24.02
1971	28.74	8.46	19.07	39.45	18.72	29.46
1981	36.30	11.42	24.38	46.89	24.82	36.17
1991	54.99	20.44	38.55	63.86	39.42	52.11
2001	76.46	44.34	61.03	75.85	54.16	65.38

तालिका 1.2 राजस्थान के विभिन्न जिलों में साक्षरता दर

(प्रतिशत में)

साक्षरता दर माप	जिलों की साक्षरता दर	कुल संख्या
70+	कोटा (74.45), झुंझुनू (73.61), सीकर (71.19), जयपुर (70.63)	(4)
60–70	चुरू (66.97), हनुमानगढ़ (65.72), अजमेर (65.06) गंगानगर (64.84), करौली (64.59), भरतपुर (62.24), दौसा (62.75), अलवर (62.48), धौलपुर (60.77), बारां (60.37)	(10)
50–60	बाड़मेर (59.65), उदयपुर (59.26), झालावाड़ (57.98), बीकानेर (57.54), जोधपुर (57.38), सवाई माधोपुर (57.34), राजसमंद (55.82), बूंदी (55.80), पाली (54.92), टोंक (52.39), जैसलमेर (51.40), भीलवाड़ा (51.09), नागौर (58.26)	(15)
40–50	डूंगरपुर (48.32), जालौर (46.51), बांसवाड़ा (44.52)	(03)

राजस्थान में साक्षरता के संबंध में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में व्यापक तरीके से अन्तर देखने में आता है। इसका एक स्पष्ट सा कारण यह है कि ग्रामीण व्यक्ति की दृष्टि में शिक्षा का महत्व बहुत अधिक नहीं है। निर्धनता एक दूसरा कारण है जिसके फलस्वरूप ग्रामीण स्थानों से संबंध रखने वाले व्यक्ति अपने बच्चों को शिक्षा देने के इच्छुक नहीं होते। अमूमन, ग्रामीणों के लिए उनकी संतान, रोजगार का एक साधन होती है।

तालिका 1.3 राजस्थान के शहरी एवं ग्रामीण इलाकों में साक्षरता

(प्रतिशत में)

वर्ष	ग्रामीण	शहरी	कुल
1961	10.9	37.6	15.2
1971	13.9	45.5	19.1
1981	17.8	47.9	30.1
1991	30.4	65.3	38.6
2001	55.9	76.9	61.0

शिक्षा की दृष्टि में पिछड़े माने जाने वाले राजस्थान के लिए यह एक सुखद बात है कि कुछ वर्षों से यहां की स्त्रियों में साक्षर होने के प्रति रुझान पुरुषों के मुकाबले बढ़ा है। पिछले दस वर्षों में प्रांत में साक्षर पुरुषों की संख्या में जहां 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई वहीं महिलाओं की संख्या में 23 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि आंकी गई है। 1951 में मात्र 2.51 प्रतिशत महिलाएं साक्षर थी, परन्तु अब साक्षर महिलाओं का प्रतिशत 44.34 हो गया है। राजस्थान की साक्षरता दर जहां अन्य राज्यों की अपेक्षाकृत कम है। वहीं राजस्थान में ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता का अनुपात शहरी क्षेत्रों की महिलाओं की अपेक्षाकृत कम है। राज्य में अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों में साक्षरता का अनुपात काफी नीचा पाया जाता है।

राज्य में पिछले कुछ वर्षों में स्कूलों में भर्ती होने वालों का अनुपात बढ़ा है लेकिन इस दिशा में अभी भी विशेष प्रगति की आवश्यकता है। प्राथमिक स्तर पर स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या भी काफी अधिक पायी जाती है विशेषकर 6–11 वर्ष के आयु समूह में।

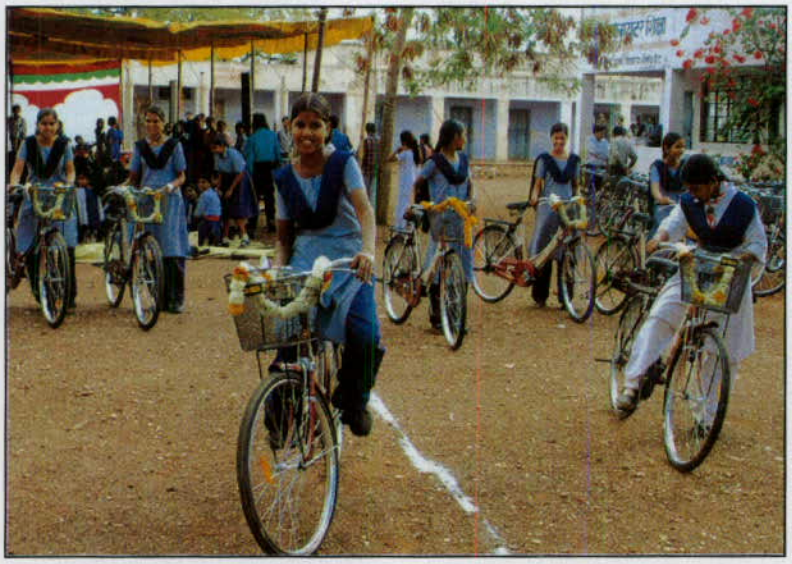

स्कूल से नई साइकिल पाकर खुश स्कूली छात्राएं

राजस्थान में 2002–2003 में कक्षा I–IV तथा V से VIII के समूहों में कुल नामांकन अनुपात (Enrolment Ratio) में लड़कियों का अनुपात क्रमशः 92.4 प्रतिशत व 40.8 प्रतिशत रहा जो कि राष्ट्रीय औसत क्रमशः 93.1 प्रतिशत व 56.2 प्रतिशत से नीचे था।

नामांकन व स्कूल छोड़ने की क्रियाओं पर कई सामाजिक–आर्थिक कारणों का प्रभाव पड़ता है। बच्चे परिवार की कम आमदनी में कुछ सहायता पहुंचाने का प्रयास करते हैं। काफी बच्चे अपने से छोटे बच्चों की देखभाल के लिए घर पर रोक लिए जाते हैं।

तालिका 1.4 स्कूल छोड़ने वाले छात्र–छात्राओं का अनुपात

(प्रतिशत में)

(I-VII) : 2002)

	छात्र	छात्राएं	कुल
राजस्थान	62.24	71.04	65.78
भारत	39.70	42.09	40.77

प्राथमिक शिक्षा के दौरान बच्चों का स्कूल छोड़ देना एक चिंताजनक विषय है। इस स्थिति से निपटने के लिए सरकार द्वारा कई योजनाएं चलाई जा रही है। इन योजनाओं में लोक जुम्बिश योजना, शिक्षाकर्मी योजना, गुरुमित्र योजना प्रमुख है। दूर दराज के गांवों और झोंपड़ियों में ये योजनाएं पढ़ने–लिखने का व्यापक माहौल बनाने के लिए लोक सहभागिता को बढ़ा रही हैं।

साक्षरता और विकास का सीधा संबंध है। साक्षरता को एक व्यापक जन आन्दोलन का रूप देने के लिए ही देश में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना हुई। साक्षरता को बढ़ावा देने हेतु राज्य सरकार स्वयं अपने प्रयासों द्वारा जन सहयोग के माध्यम से निरक्षरता का निवारण करने का प्रयास कर रही है। इस दिशा में कुछ योजनाएं प्रमुखतः निम्न है –

निःशुल्क बालिका शिक्षा – स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने हेतु राज्य सरकार द्वारा राज्य में विद्यालय/महाविद्यालय स्तर पर बालिकाओं से अध्ययन शुल्क नहीं लिया जाता है।

शिक्षाकर्मी परियोजना – यह योजना स्वीडन सरकार की सहायता से प्राप्त 90 प्रतिशत अंशदान से चलाई जा रही है। इस योजना का उद्देश्य दूर–दराज के क्षेत्रों में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन की स्थिति में सुधार तथा दूरस्थ से आने वाले अध्यापकों की उपस्थिति को सुनिश्चित करना है।

सरस्वती योजना – राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरस्वती योजना लागू की गयी। योजनान्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र में इच्छुक महिलाओं के चयन एवं प्रशिक्षण के पश्चात् सरस्वती शालाएं चलाई जा रही हैं। इस योजना का उद्देश्य 6–14 वर्ष की ग्रामीण बालिकाओं को उनके निवास स्थान के निकट प्राथमिक शिक्षा मुहैया करवाना है। ग्रामीण क्षेत्र की साक्षर महिलाओं द्वारा स्वयं अपने स्तर पर निजी रूप से प्राथमिक पाठशालाएं चलाना एक अभूतपूर्व योजना है।

लोक जुम्बिश कार्यक्रम – भारत सरकार और स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण (SIDA) की सहायता से यह योजना प्रारंभ की गई है। इसमें सीडा, भारत सरकार तथा राज्य सरकार को क्रमशः 3:2:1 के अनुपात से व्यय वहन करना है।

विभिन्न योजनाओं के साथ–साथ साक्षरता को बढ़ाने हेतु राजस्थान सरकार द्वारा वर्ष 2007–08 के बजट में विशेष ध्यान दिया गया है।

राज्य द्वारा इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया कि शिक्षण संस्थानों से दूरी बालिकाओं की शिक्षा में रूकावट बनती है। अतः वर्तमान में जनजाति छात्राओं के लिए लागू निःशुल्क साइकिल योजना को संशोधित रूप में ग्रामीण क्षेत्रों की सभी छात्राओं पर भी लागू करने की घोषणा की गयी है। नवीं कक्षा उत्तीर्ण कर दसवीं कक्षा में प्रवेश लेने वाली ऐसी प्रत्येक छात्रा को जिसका घर सबसे नजदीक सैकेंडरी विद्यालय से 2 किलोमीटर से अधिक दूरी पर है, को एक नई साइकिल 300 रुपये में देने की योजना प्रस्तावित है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सैकेंडरी विद्यालय कई गांवों से 5 किलोमीटर से अधिक दूरी पर हैं। ऐसी स्थिति में छात्राओं का साइकिल से विद्यालय जाना व्यावहारिक नहीं है। इस स्थिति में 2007–08 के बजट में गांवों से विद्यालय जाने हेतु 5 या अधिक छात्राओं को सामूहिक निजी परिवहन की सुविधा प्रदान करने हेतु ट्रांसपोर्ट वाउचर स्कीम की घोषणा की गई है। इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक पात्र छात्रा को 5 रुपये प्रति स्कूल दिवस की दर से एक ट्रांसपोर्ट वाउचर दिया जायेगा।

राज्य का मदरसा बोर्ड प्रदेश के 2 हजार से अधिक मदरसों में करीब 1 लाख 75 हजार बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य कर रहा है। अल्पसंख्यकों के शैक्षिक उत्थान के लिए 1 हजार मदरसों में शिक्षा सहयोगी उपलब्ध कराने हेतु राज्य सरकार मदरसा बोर्ड को 1 करोड़ 15 लाख रुपये व 200 मदरसों में कम्प्यूटर एवं आवश्यक साज–समान हेतु 50 हज़ार रुपये प्रति मदरसे के हिसाब से 1 करोड़ रुपये की राशि उपलब्ध कराने का प्रस्ताव है।

राज्य सरकार अपने स्तर पर साक्षरता के स्तर को बढ़ाने के निरन्तर प्रयास कर रही है परन्तु साथ ही साथ इस दिशा में विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाओं का पूरी ईमानदारी के साथ जुड़ना आवश्यक है। राज्य को अगर सौ प्रतिशत साक्षर बनाना है तो इसके लिये भागीरथ प्रयास की आवश्यकता है।

(लेखिका पीजी महाविद्यालय में समाजशास्त्र की प्रवक्ता हैं।)

ई–मेल : saraswatritu@yahoo.co.in

स्वतंत्रता दिवस 2007 के अवसर पर प्रधानमंत्री के भाषण के मुख्य अंश

मुख्य सन्देश

• भारत तरक्की के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है – गरीबी दूर करना अब एक साध्य लक्ष्य हो गया है। • आधुनिक शिक्षा में क्रांति का समय आ गया है। शिक्षा को व्यापक रूप से सुलभ कराना मुख्य लक्ष्य। • विभिन्न चिंताओं में से किसानों के कल्याण की चिंता को प्राथमिकता दी जाएगी। गांवों और शहरों के बीच की खाई को पाटने की जरूरत है। • रोजगार के नए अवसर पैदा करने के लिए औद्योगिकीकरण सर्वाधिक कारगर उपाय। • विश्व की समस्याओं के प्रति भारत का दृष्टिकोण वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धांत पर आधारित। • भारत की मिलीजुली संस्कृति और बहुलवाद उसे दुनिया के राष्ट्रों के बीच सेतु की हैसियत प्रदान करते हैं।

मुख्य पहल

• शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, कृषि और ग्रामीण विकास पर सरकारी व्यय में भारी बढ़ोत्तरी। • असंगठित क्षेत्र में सामाजिक सुरक्षा को बढ़ावा – 65 साल से ऊपर और गरीबी की रेखा से नीचे के वरिष्ठ नागरिकों के लिए वृद्धावस्था पेंशन योजना। जीवन और अशक्तता बीमा सुरक्षा। गरीबों के लिए नई स्वास्थ्य बीमा योजना शुरू की जाएगी। • आधुनिक शिक्षा में क्रांति – अच्छे स्तर के 6000 नए सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल खोले जाएंगे। माध्यामिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण शुरू किया जा रहा है। 370 जिलों में कालेज खोलने के लिए केन्द्र सरकार राज्यों को मदद देगी, ताकि छात्रों के कुल नामांकन के अनुपात को बढ़ाया जा सके। 30 नए केन्द्रीय विश्वविद्यालय खोले जाएंगे। • व्यावसायिक शिक्षा और दक्षता विकास मिशन – 1600 नए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान एवं पॉलीटेक्निक, 10,000 नए व्यावसायिक स्कूल, 50,000 नए दक्षता विकास केन्द्र खोले जाएंगे। एक करोड़ छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा मिलेगी। यह आज के स्तर से चार गुणा अधिक है। • राष्ट्रीण ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम को समूचे देश में लागू किया जाएगा। • कृषि क्षेत्र में कम से कम 25,000 करोड़ रुपये का निवेश करने के लिए एक विशेष कार्यक्रम। • पुनर्वास और पुनर्स्थापना के लिए राष्ट्रीय नीति शुरू की जा रही है। • औद्योगिकीकरण और योजनाबद्ध शहरीकरण को नए सिरे से बढ़ावा देना। • अपने आस–पास साफ–सफाई की स्थिति में सुधार लाने हेतु सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय स्वच्छता अभियान।

(पसूका)

शिक्षा की भूमिका और हमारा देश

प्रांजल धर

यह एक निर्विवाद सत्य है कि शिक्षा किसी भी राष्ट्र या समाज की प्राणवायु है, उसकी प्रेरणा है, उसकी ऊर्जा है और किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके द्वारा हासिल किए गए शैक्षिक स्तर पर ही निर्भर करता है। शिक्षा और साक्षरता दो अलग चीज़ें हैं। जहां साक्षरता का तात्पर्य अक्षरों को बोलने, समझने या लिखने तक ही सीमित है, वहीं शिक्षा का अर्थ कहीं अधिक व्यापक है। साक्षरता अगर अक्षरज्ञान से संबंधित है तो शिक्षा विचारों को समझने, उन्हें ग्रहण करने या आत्मसात करने का नाम है। शायद इसीलिए एडमंड बर्क लिखते हैं कि किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी सुरक्षा उसकी शिक्षा है। हमारे देश के लिए यह बात और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है क्योंकि भारत दुनिया का सबसे विशाल लोकतंत्र है। बेरोजगारी और कुपोषण जैसी समस्याओं के अलावा हमारी करीब एक तिहाई आबादी निरक्षर है। एक चौथाई लोग गरीबी रेखा से नीचे अपना गुजर–बसर करते हैं। अगर एक तरफ केरल जैसे शिक्षित राज्य हैं तो दूसरी और त्रिपुरा जैसे राज्य भी मौजूद हैं, जहां की 66 फीसदी आबादी गरीबी रेखा से नीचे किसी तरह अपना जीवनयापन कर रही है। ज़ाहिर है कि पूरे देश में शिक्षा की हालत या साक्षरता की पहुंच एक जैसी नहीं है। अगर ग्रामीण अंचलों और शहरी इलाकों के बीच साक्षरता में काफी अंतर है तो वहीं क्षेत्र या वर्ग के हिसाब से भी शैक्षिक स्थिति की दशा काफी विसंगतिपूर्ण है।

शिक्षा और साक्षरता से संबंधित समस्याओं का निदान ढूंढ़ना जितना महत्वपूर्ण है, उससे ज़्यादा ज़रूरी यह जानना है कि समस्या क्या है? समस्या की पहचान कैसे की जाए? क्या मणिपुर के एक गांव और उड़ीसा के एक गांव में एक ही तरह की समस्यायें हैं? क्या विज़न 2020 का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ रहे भारत को पूर्ण साक्षर बनाने के लिए सभी क्षेत्रों में एक जैसी नीतियां क्रियान्वित की जाएं? इन नीतियों का स्वरूप कैसा होना चाहिए? मणिपुरी, असमिया, तेलुगु, कन्नड़ और

आओ स्कूल चलें – पढ़ाई सबसे पहले

तमिल जैसी सभी भारतीय भाषाओं की सांस्कृतिक विरासत को किस तरह संजोया जाए? यह ठीक है कि विश्व हिन्दी सम्मेलन में बान की मून हिन्दी भाषा में बोलते हैं लेकिन हमारे अपने देश में हिन्दी की दशा क्या है? गोष्ठियों और सेमिनारों के बीच संकरी गालियों से गुज़रती हिन्दी को वास्तविक रूप से अखिल भारतीय चरित्र का कैसे बनाए जाए? क्या एक जनभाषा के बिना किसी भी प्रकार का गहन सांस्कृतिक संवाद संभव भी है? क्या यह सच नहीं है कि अनेक प्रयासों के बावजूद आज भी ज्ञान के अधिकतर फल अंग्रेजी के पेड़ों में ही लगते हैं? सोचने वाली बात है कि मूल कर्त्तव्य किसका है? क्या यह ज्ञानियों का कर्त्तव्य है कि वे अपनी बात कृषि प्रधान देश में किसानों तक पहुंचाने के लिए जनभाषा में कहें या फिर यह किसानों और ग्रामवासियों का दायित्व है कि वे पहले किसी इंग्लिश पब्लिक स्कूल में अंग्रेजी सीखें और तब सरकारी नीतियों का लाभ लेने योग्य बनें? गांवों के देश भारत में शिक्षा से संबंधित ऐसे तमाम मूलभूत सवाल हैं। भारत के विकसित होने का रास्ता इन सवालों के जवाबों से होकर ही जाता है।

'गांधी, गांव और गरीब' को अपनी प्रेरणा मानने वाली ग्रामीण विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट एक व्यापक लक्ष्य का आह्वान करती है। रिपोर्ट के पहले ही पृष्ठ पर भारत के युगनायक स्वामी विवेकानंद की एक उक्ति उल्लिखित है। उक्ति इस प्रकार है: "असली भारत गांवों में बसता है, जब तक हम जनजातियों और पिछड़े वर्ग के लोगों का उत्थान करने में समर्थ नहीं होते, तब तक भारत का भविष्य अंधकारमय रहेगा।" इस उक्ति पर ज़रा गौर करते हैं। क्या सच में असली भारत गांवों में बसता है? शिक्षा पर बेतहाशा बढ़ते जा रहे खर्च, आधारभूत शैक्षिक सुविधाओं के अभाव और शिक्षा प्रणाली पर विद्वानों के बीच हो रही गरमागरम बहसों के बीच यह सवाल और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है कि असली भारत क्या है, वह चाहता क्या है, उसकी बुनियादी ज़रूरतें क्या हैं और वह रहता कहां है? अनेक सरकारी प्राथमिक विद्यालय या तो बिना भवन के ही हैं या फिर उनमें सिर्फ़ एक कमरा है, महिलाएं अभी भी शिक्षा से चिंताजनक स्तर तक वंचित ही हैं, देश के तकरीबन पचास जिले ऐसे हैं जहां महिलाओं की साक्षरता दर तीस फीसदी से भी कम है, अल्पसंख्यकों की शिक्षा अभी भी देखभाल की मांग करती है और शिक्षा को रोज़गारपरक या जनकल्याणकारी रूप दिया जाना अभी बाकी ही है। एन सी ई आर टी की पाठ्यपुस्तकों में बिल्कुल शुरूआत में गांधी जी का एक जन्तर लिखा रहता है। वह जन्तर पढ़ लेना आसान है लेकिन उसे ग्रहण करना मुश्किल है। उस जन्तर को आचरण में ला पाना सामान्य आदमी के लिए तो असंभव की हद तक कठिन है। क्या यह सच नहीं है कि गांधी जी के उस जन्तर का उल्लेख इन पाठ्यपुस्तकों में आचरण के लिए ही किया गया है, साज–सज्जा के लिए नहीं? निरक्षर या वंचित आबादी की तो बात ही छोड़ दीजिए, शिक्षित या सभ्य लोगों से भी पूछा जा सकता है कि जब उन पर उनका अहम हावी होता है तब क्या वे उस जन्तर को आचरण में लाते हैं?

सर्व शिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन कार्यक्रम और महिला समाख्या जैसे कई कार्यक्रम शिक्षा को सर्वजन सुलभ बनाने पर ही केन्द्रित हैं। शैक्षिक पहुंच और उपलब्धि के क्षेत्र में लैंगिक अंतरों के निराकरण पर ज़ोर है, प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाया जा रहा है, जनशिक्षण संस्थान जैसे वयस्क शिक्षा के कार्यक्रम विविधता में एकता के बोध को मज़बूती दे रहे हैं और केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान जनजातीय भाषाओं समेत आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुसंधान कर रहा है। पिछले साल फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेले में भारत सम्माननीय अतिथि भी बना था। नए और पुराने अनेक विषयों पर तमाम शैक्षिक अनुसंधान हो रहे हैं, ज्ञान का भण्डार लगातार समृद्ध होता जा रहा है और हर महीने किसी न किसी विषय पर चार–पांच मोटी–मोटी किताबें तो देखने–सुनने में आ ही जाती हैं। दिल्ली, मुंबई या हैदराबाद जैसे महानगरों में ग्रामीण शिक्षा और साक्षरता पर होने वाले सेमिनारों की तादाद बढ़ी है। सूचना–प्रौद्योगिकी या सॉफ्टवेयर इंजीनियरिंग से संबंधित ज्ञान की ही बात करें तो भारत में ज्ञान का भण्डार यूरोप, अमेरिका और अन्य विकसित देशों की तरह समृद्ध होता जा रहा है। आधुनिक ज्ञान के चलते दक्षता और जीवन की रफ़्तार बढ़ी है, ज्ञान को उपयोगी बनाने की कोशिशें की जा रही हैं और भूमण्डलीकरण का वर्तमान दौर 'ज्ञान के युग' के नाम से जाना जा रहा है।

लेकिन यह मत पूछिए कि इस ज्ञान का होता क्या है। कुछ क्षेत्रों और विषयों पर तो सक्रियता नज़र आती है लेकिन बाकी क्षेत्रों में विचार और क्रिया, दोनों का जबरदस्त सन्नाटा है। इस सन्नाटे के कारणों में सबसे बड़ा कारण तो भाषा है। कितने शोध जनभाषा या हिन्दी में होते हैं और वे भारत के जन–गण–मन का कितना कल्याण कर पाते हैं? अधिकतर सेमिनार गांवों, गरीबों, निरक्षरों या वंचितों की शिक्षा का रेखांकन अंग्रेजी में कुछ इस तरह करते हैं जैसे प्राइमरी स्कूल के बच्चे गाय पर निबंध लिखते हैं। इस देश में अंग्रेजी का सम्मान तो बहुत है लेकिन अंग्रेजी आम जन जीवन, खेतों–खलिहानों और मज़दूरों–किसानों से आज भी बहुत दूर है। 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' जैसे मुहावरों को हम आज आजादी के छह दशक बाद भी कितना समझ पाए हैं? स्वतंत्र भारत की स्वतंत्र शिक्षा प्रणाली ने निराला के 'तोड़ती पत्थर' की नायिका को कितनी रोशनी दिखाई है? ज्ञान के भण्डार का अवतरण अगर जनभाषा में नहीं होता है तो किसी व्यापक सामाजिक परिवर्तन की बात करना बेमानी ही है। भूलना नहीं चाहिए कि दुनियां में जहां कहीं भी क्रांति हुई हैं, बड़ा सामाजिक परिवर्तन हुआ है या आर्थिक विकास हुआ है, स्थानीय भाषा में काम करने से ही हुआ है। समतामूलक समाज या विकसित राष्ट्र का निर्माण कैसे हो सकता है, जब ज्ञान एक खास वर्ग तक ही सीमित हो, शिक्षा इतनी महंगी हो जाए कि आम नागरिक उसे हासिल ही न कर सकें?

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने एक बार कहा था कि मानव की जितनी भी उपलब्धियां हैं, शिक्षा उन सबमें सबसे बढ़कर है। अंग्रेजी के लोभपूर्ण आतंक के आगे सोचना पड़ जाता है कि जिस प्रकार गुण के बिना रूप और उपयोग के बिना धन व्यर्थ है, ठीक उसी प्रकार विनम्रता के बिना विद्या, ज्ञान या शिक्षा व्यर्थ है। अंग्रेजी न जानने की वजह से हीन भावना के उपजने की बहुश्रुत कहानी इसी बात से ताल्लुक रखती है। यहां उद्देश्य अंग्रेजी के महत्व को कम करके आंकना या अंग्रेजी को बुरा साबित करना नहीं है। बल्कि यह सोचना पड़ेगा कि गांधी या माओ ने अगर अपने–अपने समयों और समाजों को झकझोर कर रख दिया तो एक जनभाषा के बूते पर ही वे ऐसा कर पाए। भारत हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसी प्राचीन सभ्यताओं की भूमि रहा है, प्राचीन काल में जगद्गुरु रहा है और प्राचीन भारत ज्ञान–विज्ञान की दृष्टि में अपने समय से आगे रहा है। माया और इंका सभ्यताएं तो काफ़ी बाद की हैं। फिर अचानक इस देश को किस दीमक ने घेर लिया? आज लोग पूछते हैं कि भारत में कोई रूसो या कोई वाल्टेयर क्यों नहीं पैदा होता? कैसे पैदा हो सकता है, जब तक हम शिक्षा को सभी नागरिकों तक नहीं पहुंचा पाते, जब तक हम अपनी भाषा का उचित महत्व नहीं स्थापित कर पाते? ध्यान रखना पड़ेगा कि जब तक आम आदमी शिक्षा को पूरी तरह प्राप्त करने के योग्य नहीं बना दिया जाता तब तक ज्ञान का पूरा भण्डार, ज्ञान कम और विचारों का मुर्दा गोदाम ज़्यादा है। ऐसी शिक्षा का क्या अर्थ है जो विचारों का क्रियान्वयन न कर सके, चरित्र का निर्माण न कर सके, कोई सुंदर कल्पना न कर सके? किसी लेखक ने लिखा भी है: बच्चों के नन्हे हाथों को चांद–सितारे छूने दो, चार किताबें पढ़कर ये भी हम जैसे हो जाएंगे.....।

शिक्षा को प्रचारित–प्रसारित करने वाली तकनीकों और माध्यमों का विस्तार हुआ है। पाठ्यपुस्तकें, समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविज़न और अब तो खैर इंटरनेट भी जानकारियां देने और सूचना पहुंचाने के ही माध्यम हैं। भारत में किसी भी युग में शिक्षा के इतने संसाधन शायद ही रहे हैं। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में विसंगतियां घटने या खत्म होने की बजाय बढ़ती गई हैं? एक तरफ तो गांवों में सुविधाओं की कमी के चलते तमाम बच्चे प्राथमिक शिक्षा तक से वंचित हैं, वहीं दूसरी ओर कई लोग ज्ञान के मौजूदा उत्पादन में इसलिए हाथ बंटा रहे हैं कि फेलोशिप मिले, प्रोफेसरशिप मिले, विदेश यात्रा करने का मौका मिले या अपनी बिरादरी में नाम, पद, पैसा और प्रतिष्ठा मिले। हालांकि यह पूरी प्रक्रिया देशसेवा नामक एक रेशमी चादर से ढंक दी जाती है ताकि सैद्धान्तिक रूप से कोई दोष न दिखे। विसंगति का दूसरा उदाहरण लेते हैं। एक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय अखबार में एक दिन 'पढ़े–लिखे लोगों में भी कम नहीं हुई दहेज की भूख' शीर्षक से एक बहुत बड़ी खबर आती है जिसमें लिखा होता है कि राजधानी दिल्ली में पिछले सिर्फ़ चंद दिनों में दहेज उत्पीड़न के दर्जन भर मामले सामने आए हैं। ख़बर पढ़े–लिखे लोगों की मानसिकता बयां करती है और फिर पढ़े–लिखे लोग खबर को पढ़कर, अखबार का पृष्ठ पलटते हुए आगे बढ़ जाते हैं। ज्ञानहीन संवेदना और संवेदनाहीन ज्ञान का यह बेमेल उदाहरण विसंगति नहीं तो और क्या है? निर्धन छात्र–छात्राओं की सहायता के लिए छात्रवृतियां प्रदान की जाती हैं किन्तु ये छात्रवृत्तियां ज़मीनी हकीकत को कितना बदल पाती हैं? उत्तर प्रदेश में बरसों पहले शुरू की गई कन्या विद्याधन योजना की राशि पांच सौ से अधिक छात्राओं को अभी तक नहीं मिल पाई है और बालिकाओं के अभिभावक जिला विद्यालय निरीक्षकों के दफ़्तरों का चक्कर लगा रहे हैं। क्या यह विसंगति नहीं है? खासकर इस तथ्य के आलोक में, कि उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड या उड़ीसा ऐसे राज्यों में आते हैं जिनमें महिलाओं की सबसे कम साक्षरता वाले सबसे ज़्यादा जिले हैं।

भारतीय संस्कृति के अनुपम नमूने पूर्वोत्तर की बात करें तो सरकार यह मानती है कि पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र में शिक्षा के आधारभूत ढांचे का अभाव है और इस क्षेत्र में दी जा रही शिक्षा के स्तर को सुधारने की ज़रूरत है। हालांकि मिज़ोरम और कुछ दूसरे राज्यों में साक्षरता दर अच्छी है, फिर भी जातीय वैविध्य, भाषाई विभिन्नता और हिंसा जैसे कुछ कारण शिक्षा जैसी महत्वपूर्ण समस्या से अनिवार्य तरीके से गुंथे–बिंधे हैं। सरकार पूर्वोत्तर के लिए विशेष तौर पर प्रयासरत है। पूर्वोत्तर क्षेत्र को असमान्य पूल से अनुदान सहायता दी जा रही है, माध्यमिक, उच्च और प्राथमिक शिक्षा के साथ–साथ पूर्वोत्तर की साक्षरता पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है और नवोदय विद्यालय समिति पूर्वोत्तर राज्यों के प्रत्येक जिले में एक नवोदय विद्यालय खोलने के लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इसके अलावा अल्पसंख्यकों की शिक्षा के लिए प्रावधान किए गए हैं। आज पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, असम विश्वविद्यालय, नागालैण्ड विश्वविद्यालय और मिजोरम विश्वविद्यालय राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्था आयोग की सूची में आते हैं। इन प्रयासों के बावजूद समस्या पर उसकी समग्रता में ध्यान देना ज़रूरी है। एक ही दवा सबके लिए फ़ायदेमंद नहीं होती। जो समस्यायें असम की है, ठीक वही समस्यायें मणिपुर या नागालैण्ड की नहीं हैं। इतना ही नहीं, उखरूल और चुराचांदपुर की समस्याओं का अंतर उससे काफ़ी भिन्न है जो कार्बी–आंगलौंग और डिब्रूगढ़ में हैं। इसके अलावा पूर्वोत्तर की आर्थिक प्रगति मंद है, विकास का अभाव है, आर्थिक गतिविधियां बहुत कम हैं, कराधार सीमित है, भौगोलिक दूरियां बहुत ज़्यादा हैं और भौगोलिक रूप से पूरा क्षेत्र थोड़ा अलग–थलग पड़ जाता है, निवेश की कमी है, पूंजी–निर्माण की उलझनें हैं, वस्तुओं की उत्पादन लागत काफ़ी अधिक है, उत्पादों के लिए विपणन साधनों की कमी है, परिवहन की सुविधाएं सीमित हैं, मानव विकास की हालत अच्छी नहीं है और उपलब्ध संभावनाओं का कुशल उपयोग नहीं हो पा रहा है। ये सब समस्यायें शिक्षा से कहीं न कहीं ज़रूर जुड़ी हैं।

शिक्षा का एक समकालीन पहलू और भी है। कारपोरेट संस्कृति के विस्तार और फास्ट फूड शैली के चलन की वजह से यह पहलू और भी महत्वपूर्ण हो चला है। जब पूरा विश्व एक ग्राम की शक्ल अख़्तियार कर रहा हो, तब यह पहलू और भी स्पष्ट होता है। शिक्षा का यह पहलू है मूल्य, मानक और आदर्श। कोई भी शिक्षा मूल्यपरक होती है और मानवता को बेहतर आदर्शों की ओर ले जाती है। रचनात्मक शक्ति का विकास करते हुए जो सृजन की निहित संभावनाओं को उजागर कर सके, वही शिक्षा है। आज शिक्षा प्राप्त करके डॉक्टर, इंजीनियर, आई.ए.एस. या पी.सी.एस. यानी प्रशासक बनने की चाह के पीछे जो ग्लैमर काम करता है, वह कम से कम प्रशंसनीय तो नहीं ही है। शिक्षा तो वह है जो सुमार्ग दिखाए। बेहतर नौकरी पाने के मूल में जो बात है उसे विद्वान लक्ष्मी नारायण मिश्र ने कुछ यों व्यक्त किया है, "जिस देश में शिक्षा की उच्चतम उपलब्धि लोक सेवा आयोग की प्रतिद्वन्द्विता से प्राप्त बड़ा वेतन, बड़ा पद और बड़ी सुविधा है, अधिकार से अंहकार है, अनुचित रूप से धन कमाने की प्रवृत्ति है, लोक–हित के विरोध में व्यक्ति–हित की साधना है, उस देश की अधोगति स्वयंसिद्ध है। जिस देश के तरुण विज्ञान विषय की शिक्षा लेकर वैज्ञानिक बनने की कामना नहीं करते, मासिक वेतन जिस देश के तरुणों का भगवान बन गया है, उस देश को भौतिक, नैतिक और सांस्कृतिक, तीनों रूपों में दरिद्र रहना है। लोक सेवा आयोग की प्रतिद्वन्द्विता में जहां दस हज़ार तरुण बैठते हैं, वहां सौ–सवा सौ भले ही सफलता प्राप्त करें, शेष असफल होकर कुण्ठित जीवन बिताते हैं, उनके कर्म की गंगा सूख जाती है। जिस राष्ट्र की प्रतिवर्ष इतनी हानि हो रही है, वह राष्ट्र भी अगर जीवित है, तो मृत राष्ट्र किसे कहेंगे?"

मिश्र जी की ये बातें आज के समय में भी कितनी प्रासंगिक हैं, यह बताने की ज़रूरत नहीं है। हां, इतना बदलाव ज़रूर आ गया है कि जब ये पंक्तियां लिखी गईं होंगी तब लोक सेवा आयोग की परीक्षा में दस हज़ार लोग बैठते रहे होंगे। आज यह संख्या बढ़कर लाखों में पहुंच गई है। ज़ाहिर है कि प्रति वर्ष होने वाली हानि भी बढ़ गई होगी। वर्तमान शिक्षा प्रणाली किन मूल्यों को बढ़ावा दे रही है? इन मूल्यों से निर्मित भारत की ठोस वैचारिकी या सुदृढ़ चिंतन कैसा होगा? जनजीवन पर उसके सामाजिक, आर्थिक अथवा सांस्कृतिक प्रभाव क्या होंगे? इतना तो तय है कि तकरीबन सवा अरब की अपनी आबादी में डेढ़–दो करोड़ लोग अगर शिक्षित और सुखी, सभ्य और समृद्ध हो भी जाएं तो उससे भारत का कल्याण नहीं होने वाला है। वर्ष 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की डेढ़ सौवीं जयंती पर या स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् बीते छह दशकों पर नज़र डालें तो आज भी 'गोदान' का सामाजिक परिवेश या प्रेमचंद के 'होरी' की तकदीर में कोई क्रांतिकारी बदलाव नहीं आ गया है। शिक्षित वर्ग यानी ज्ञानियों और जनसाधारण के बीच आज भी सार्थक संवाद स्थापित नहीं हो पाया है। 'दुख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात' जैसी उत्साहपूर्ण पंक्तियों से शुरू हुई यात्रा आज भी नवल प्रभात की मंजिल को हासिल नहीं कर पाई है। झुग्गियों, मलिन बस्तियों और गरीब गांवों में रह रही आबादी इस सच्चाई का प्रतिदिन ही नहीं, हर पल सामना करती है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की ओर से ज़ारी की गई बिल्कुल ताज़ी रिपोर्ट को गौर से देखने पर यही बात सामने आती है कि गांव तो गांव, शहरों की झुग्गी–बस्तियों के लोग घर, बिजली, पानी और चिकित्सा जैसी निहायत बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं। इस रपट के मुताबिक विकासशील देशों के नब्बे फ़ीसदी से ज़्यादा लोग मलिन बस्तियों में रहते हैं, जिनमें केवल भारत और चीन के सैंतीस प्रतिशत लोग शामिल हैं। क्या इनके लिए शिक्षा की बात करने का कोई अर्थ रह जाता है? इनके लिए क्या प्राथमिक होगा? जीवन और घर, या शिक्षा?

ज़ाहिर है कि इन वंचित वर्गों तक शिक्षा की कितनी पहुंच है, इनके जीवन में शिक्षा की कितनी भूमिका है या शिक्षा को ये कितनी प्राथमिकता देते हैं, इसका हवाई सर्वेक्षण कर लेना या वातानुकूलित ट्रेन के पारदर्शी शीशे से झांककर इनके बारे में निष्कर्ष निकाल लेना एक अलग बात है। लेकिन इनके कल्याण के लिए ठोस और कटिबद्ध प्रयास करना एक बिल्कुल दूसरी बात है। एक शिक्षित समाज मेल–जोल, सामूहिकता या एकीकरण की अनिवार्य भावनाओं का बोध कहीं अधिक गहराई और तीव्रता से कर सकता है। शिक्षा ही यह भूमिका अदा कर सकती है कि भारत विकास के पथ पर लगातार आगे बढ़ता रहे, भारत के नागरिक मानव–जीवन के चरम लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हों, भारत पुनः ज्ञान गुरु का दर्जा प्राप्त कर सके।

नागरिकों का शिक्षित होना एक प्रकार से सुशासन और पारदर्शिता को जन्म देता है। शिक्षा की मुख्य भूमिका भी यही है कि वह सद्गुणों और सद्विचारों को बढ़ावा दे। एक शिक्षित नागरिक अपेक्षाकृत अधिक तार्किक, चिंतनशील और विनम्र हो सकता है। तार्किकता नागरिकों को सजग बनाती है, अपने परिवेश के प्रति सजग बनाती है और जिज्ञासाओं को जन्म देती है। उदाहरण के लिए नालंदा में पहला सूचना के अधिकार से संबंधित ग्रामीण क्लब बनाया गया है। नालंदा के ग्रामीण नागरिक भी सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत अपने अधिकारों का प्रयोग कर रहे हैं। यह लोकतंत्र और पारदर्शिता का एक छोटा–सा ही सही, सफल उदाहरण है। लेकिन सूचना के अधिकार का उपयोग एक आम आदमी तभी कर सकता है जब वह साक्षर हो। साक्षरता, शिक्षित बनने की प्रक्रिया में एक सहायक भूमिका ज़रूर निभा सकती है। लेकिन शिक्षा के लक्ष्य, साक्षरता के लक्ष्यों से कहीं व्यापक होते हैं। इसीलिए शिक्षा की भूमिका भी साक्षरता से कहीं बड़ी है, विस्तृत है और गहन है। शिक्षा मानवता की प्रशंसनीय उपलब्धि है और शिक्षा की भूमिका देश, समाज, राष्ट्र और मानवता की जटिलताओं को सुलझाने में निहित है। यही सच्ची शिक्षा है और यही मनुजत्व भी राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा भी है: है सच्चा मनुजत्व ग्रंथियां सुलझाना जीवन की।

(लेखक मासिक पत्र 'जनादेश' के संपादक हैं)
ई–मेल : pranjaldhar@gmail.com

प्राथमिक शिक्षा: बढ़ता प्रयास-घटता स्तर

मयंक श्रीवास्तव

प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में प्राथमिक शिक्षा प्रथम अनिवार्यता की वस्तु है। यह पहली सीढ़ी है जिसे सफलतापूर्वक पार कर के ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुंचता है। कहा जाता है कि राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। प्राथमिक शिक्षा का राष्ट्रीय विचारधारा और चरित्र निर्माण में बहुत योगदान है। प्राथमिक शिक्षा का सम्बन्ध किसी विशेष वर्ग या व्यक्ति से नहीं बल्कि सम्पूर्ण जनसंख्या से है। इसका हर कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से सम्पर्क होता है। प्राथमिक शिक्षा राष्ट्र प्रगति का मूल आधार है। यदि प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना हुई तो भारत का पतन निश्चित है। इसी सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द ने कहा है "मेरे विचार से जनसाधारण की अवहेलना महान राष्ट्रीय पाप है और हमारे पतन के कारणों में से एक है। सब राजनीति उस समय तक विफल रहेगी जब तक कि भारत में जन साधारण को एक बार भली प्रकार शिक्षित नहीं कर लिया जायेगा"।

भारत में प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा कोई नई बात नहीं है। यह ब्रिटिश काल से चली आ रही प्रथा जैसी है। कम्पनी के शासन काल में उच्च शिक्षा की अनेक संस्थाएं खोली गयी है लेकिन प्राथमिक शिक्षा पर विचार नहीं किया गया। अनेक प्रयासों के बाद लार्ड डलहौजी ने 1854 में बंगाल में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना करके इस सम्बन्ध में मुहिम शुरू की। लेकिन डलहौजी का यह प्रयास भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश के लिये सागर में दो बूंद के समान था। दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार प्राथमिक शिक्षा पर धन खर्च करना ही नहीं चाहती थी। कुल मिलाकर प्राथमिक शिक्षा ब्रिटिश शासन काल में उपेक्षित रही।

20वीं शताब्दी में राष्ट्रीय आन्दोलन ने जन-जन के मन में आशा और आकुलता का संचार कर दिया था। उस अवसर पर देश प्रेम से आप्लावित भारतीय नेताओं ने अपने देशवासियों के बौद्धिक और आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान के लिये शिक्षा के महत्व का सन्देश प्रसारित किया। 20वीं सदी के प्रथम दशक में बम्बई के सर चिमन लाल सीतलवाद और सर इब्राहिम रहीमतुल्ला जैसे व्यक्तियों ने अनिवार्य शिक्षा की मांग की। अपने प्रयासों में इन लोगों को सफलता मिली और 1893 में बड़ौदा राज्य के अमरेली तालुका में नौ गांवों में प्राथमिक शिक्षा की शुरूआत की गयी। इस प्रक्रिया से प्रभावित हो करके गोपाल कृष्ण गोखले ने भी 1910 में अपना प्रयास शुरू किया। इसी सन्दर्भ में "1911 में गोखले विधेयक" प्रस्तुत किया गया। जिसे सरकार ने स्वीकार नहीं किया। यह प्रस्ताव 13 मतों के विरूद्ध 38 मतों से गिरा दिया गया। लेकिन इस बात से गोखले हताश नहीं हुये। उन्होंने अपना प्रयास जारी रखा और अन्ततः सफलता मिली। वर्तमान में जो शिक्षा हमारे देश में क्रियान्वित है वह प्राचीन काल का ही आधुनिक रूप है।

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अनेक समितियां और आयोग गठित किये गये। कुछ की संस्तुतियां लागू हुई कुछ की नहीं। वर्ष 1960 तक राज्यों को अपने क्षेत्र के 06 से 14 वर्ष के बालकों के लिये निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करनी थी। किन्तु एक अनुमान के अनुसार 1960 तक प्राथमिक विद्यालयों में (कक्षा 01 से कक्षा 05) कुल 62 प्रतिशत बालक-बालिकाओं ने नामांकन कराया। जबकि वर्तमान में प्राथमिक पाठशालाओं की संख्या 03 लाख है। 11 से 14 आयु वर्ग की जनसंख्या के 22 प्रतिशत बालक-बालिकाओं ने उच्च प्राथमिक शिक्षा (कक्षा 06 से कक्षा 08) के लिये नामांकन कराया। राष्ट्र शिक्षा नीति 1986 में शिक्षा लोक व्यापीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये व्यापक चिन्ता व्यक्त की गयी और शिक्षा को हर कहीं हर किसी तक गांव गांव और बच्चे-बच्चे तक सहज

छोटा सा घर और पढ़ाई का डर

प्रारम्भिक कक्षाओं में नामांकन

(लाख में)

वर्ष	प्राथामिक कक्षाएं (1 से 5)			उच्च प्राथमिक कक्षाएं (6–8)		
	बालक	बालिका	योग	बालक	बालिका	योग
1950–51	138.0	54.0	192.0	26.0	5.0	31.0
1960–61	236.0	114.0	350.0	51.0	16.0	67.0
1970–71	357.0	213.0	570.0	94.0	33.0	133.0
1980–81	453.0	285.0	738.0	139.0	68.0	207.0
1990–91	580.0	410.0	991.0	209.0	124.0	333.0
1993–94	618.0	463.9	1081.9	242.1	157.0	399.1

और सुलभ कराने के लिये समय–समय पर अनेक कार्यक्रम जैसे आपरेशन ब्लैक बोर्ड (1988), न्यूनतम अधिगम स्तर (1989), गैर पारम्परिक शिक्षा (1979) सहित अनेक योजनायें चलाई गयी। 1991 की जनगणना के अनुसार प्राथमिक शिक्षा में अध्ययन हेतु 10 करोड़ बालकों ने नामांकन कराया जो 1951 की तुलना में 05 गुना ज्यादा है। 2001 में 882 बच्चे प्रति हजार स्कूल जाने लगे हैं जिनमें ग्रामीण और शहरी प्रतिशत क्रमशः 43.78 और 56.22 प्रतिशत है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार द्वारा किये गये विभिन्न प्रयासों के फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर शिक्षण संस्थाओं, शिक्षकों की संख्या तथा विद्यालयों में नामांकन में प्रभावी रूप से बढोत्तरी हुई है। लेकिन जनसंख्या में इससे अधिक तेजी से वृद्धि होने के कारण यह अप्रभावी रही है। सरकार के करोड़ों रुपये पानी की तरह बह रहे हैं पर उसके नतीजे असन्तोषजनक हैं। केन्द्र सरकार ने 86वें संविधान संशोधन के जरिये 06 से 14 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा दिलाने का मौलिक अधिकार प्रदान किया। पर आज भी सरकारी स्कूल प्रायः खाली दिखते हैं। राज्य सरकारें "स्कूल चलो अभियान" चलाते हैं। लेकिन यह अभियान केवल नारा बनकर रह जाता है। अभिभावक भी कम वेतन पाने वाले अप्रशिक्षित अध्यापकों से सम्बन्धित महंगे पब्लिक स्कूलों में ही अधिक फीस देकर बच्चों को पढ़ाना बेहतर मानते हैं। जहां एक तरफ शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी हैं वहीं दूसरी तरफ सरकारी स्कूलों के प्रति अविश्वसनीयता भी बनी है। शहरों की देखा देखी अब गांव में भी निजी स्कूलों का चलन बढ़ता जा रहा है। निजी ग्रामीण स्कूल शिक्षा के नाम पर खुलेआम ठगी का ठिकाना बन गये हैं। शिक्षा प्रविधि और संसाधनों की उपलब्धता पर जोर देने के बजाय यह स्कूल ग्रामीण अभिभावकों की असहनीय भावना का नाजायज शोषण करते हैं। जो अपने बच्चों को शहर की भांति शिक्षा उपलब्ध कराने में असमर्थ हैं। देखा जाए तो प्राथमिक सरकारी विद्यालयों की जर्जर अवस्था और अनुलब्धता इस उदासीनता को हवा दे रही है। आज प्राथमिक सरकारी विद्यालयों में न तो छात्रों के बैठने के लिये फर्श है न तो श्यामपट है और न ही अन्य विद्यालीय सहायक सामग्रियां है। यहां तक कि अधिकांश विद्यालयों के भवन भी गिर गये हैं। प्राथमिक विद्यालयों में यही कारण छात्रों के अभाव का मुख्य कारण हैं। ग्रामीण स्कूलों में जाने वाले बच्चों की संख्या में उम्र बढ़ने के साथ दर्ज की जाने वाली गिरावट शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक रही। क्योंकि शिक्षा को लेकर उन बच्चों की आशायें कुछ और होती है किन्तु ग्रामीण बच्चों का रुख शिक्षा के प्रति कुछ और ही होता है।

आधारभूत सुविधाओं और संसाधनों के अभाव के बावजूद ग्रामीण निजी स्कूल अपने प्रति आकर्षण में दिनों दिन सुधार करते जा रहे हैं। क्योंकि गांव में मौजूद सरकारी स्कूलों का शिक्षण उनसे भी कहीं अधिक खराब है। विश्व बैंक और समाचारपत्रों में प्रकाशित कुछ सूचनाओं के अनुसार विभिन्न राज्यों के शिक्षाकर्मी एक चौथाई दिवसों में भी स्कूल जाना उचित नहीं समझते है। इसलिए निजी स्कूलों की विश्वसनीयता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट के अनुसार आंध्र प्रदेश और असम जैसे कुछ राज्यों में प्राथमिक शिक्षकों की अनुपस्थिति की दर 31 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षक 26 प्रतिशत कार्य दिवसों पर स्कूल जाना उचित नहीं समझते। सामाजिक चेतना के हिसाब से अग्रणी माने जाने वाले राज्य केरल और पंजाब में भी यह दर 18 प्रतिशत हैं। प्राथमिक शिक्षकों की यह अनुपस्थिति सरकार के उदासीन रवैये का ही परिणाम है। इतने दिनों तक काम से गायब रहने के बावजूद कोई जवाबदेही नहीं है। प्राथमिक शिक्षा की महत्ता ये शिक्षक नहीं समझते है। प्राथमिक शिक्षा

जर्जर अवस्था में प्राथमिक विद्यालय

जीवन के विकास की आधारशिला है। इसी काल में बच्चों के मस्तिष्क की संवेदनशीलता बढ़ती है और उनका शारीरिक विकास भी होता है। बच्चों में जो आदतें और सामाजिक विश्वास इस अवधि में पैदा होते हैं वह सम्पूर्ण जीवनकाल में बना रहता है।

अब तक पिछले पांच दशकों में सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में जो भी नीतियां बनाई गई हैं। उनके क्रियान्वयन में अरबों–खरबों रुपये खर्च भी किये गये। कुछ नवीन कार्यक्रम भी चलाये गये लेकिन परिणाम संतोषजनक नहीं रहा है। अगर प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ कर दिखाना है और नई चुनौतियों का सामना करना है तो अब पुराने प्रयासों को छोड़ना होगा और कुछ नए कदम उठाने होंगे।

नई शिक्षा नीति और प्राथमिक शिक्षा

भारत में शिक्षा का महत्व हमेशा से रहा है और इसे सर्वोच्च धन स्वीकार किया जाता रहा है। ऐसा इसलिए क्योंकि न इसे कोई चुरा सकता है, न इसे कोई राजा हर सकता है। साथ ही यह बांटने पर बढ़ती है। भले ही भारत में विदेशी आक्रान्ताओं के आने से इसकी विकास गति कम हुई है परन्तु पहले भी भारत के घर–घर में प्राथमिक शिक्षा दी जाती रही है। 1947 तक इस पक्ष पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ा लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात यह विचार किया गया कि प्राथमिक शिक्षा देश की समस्त शैक्षिक संरचना की नींव है और यही नींव कमजोर होगी तो उस पर खड़ा शिक्षारूपी भवन कैसे मजबूत हो सकता है। यही कारण है कि केन्द्र सरकार ने अपनी जागरूकता के चलते 1976 में शिक्षा को समवर्ती सूची के अन्तर्गत कर दिया। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अधिक निवेश पर जोर देती है। सरकार द्वारा यह प्रस्ताव भी पारित किया गया। इस सम्बन्ध में सभी सम्बन्धित व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए "भारत शिक्षा कोष" के नाम से एक निधि बनाई जाए ताकि प्राथमिक शिक्षा में धन की कमी महसूस न हो। यदि शिक्षा पर किए गए व्ययों का विश्लेषण किया जाए तो शिक्षा के लिए संसाधन बढ़ाने की वचनबद्धता और आवंटन पिछले वर्षों की तुलना में बढ़े हैं।

सूना पड़ा प्राथमिक विद्यालय

शिक्षा के क्षेत्र में पहली योजना में 151 करोड़ रुपये खर्च किये गये और 10वीं योजना में यह खर्च बढ़ करके 43,825 करोड़ रुपये हो गया है। यह वृद्धि सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत व्यय के सन्दर्भ में भी हुई। जहां 1951–52 में जीडीपी का 0.62 प्रतिशत व्यय किया गया वहीं 2002–03 में 3.98 प्रतिशत व्यय किया गया। दसवीं योजना के शिक्षा के कुल खर्च 43,825 करोड़ रुपये में से प्राथमिक शिक्षा के लिए 30,000 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई। इससे यह स्पष्ट है कि शिक्षा के क्षेत्र में सरकार जागरूक है और व्यय में निरन्तर वृद्धि कर रही है। इस व्यय के जरिए सरकार द्वारा कुछ कार्यक्रम भी चलाये जा रहे हैं जिनमें प्रमुख है:–

सर्व शिक्षा अभियान (2001) – देश में 6 से 14 वर्ष की आयु के बालक को हर दशा में कक्षा 1 से 8 तक की अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने के एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य को लेकर केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 2000–01 के बजट में सर्व शिक्षा अभियान की घोषणा की गई। इस अभियान को बल प्रदान करने के लिए प्राथमिक शिक्षा को बच्चों के मौलिक अधिकार में सम्मिलित किये जाने हेतु 93वें संविधान संशोधन को भी मान्यता दे दी गई है। इस दस वर्षीय महत्वाकांक्षी योजना को अमली जामा पहनाने के लिए केन्द्र सरकार ने 98,000 करोड़ रुपये की विशाल धनराशि की व्यवस्था की। इस महत्वपूर्ण अभियान के अन्तर्गत सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता के साथ–साथ उपयोगी और गुणवत्ता युक्त होने पर भी जोर दिये जाने का लक्ष्य है। देश में सभी बालकों की प्राथमिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था हेतु सरकार ने अनौपचारिक शिक्षा योजना (1979), आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना (1987), बेसिक शिक्षा परियोजना (1993), जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (1994), मध्याह्न भोजन योजना (1999) जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम लागू किये है।

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में योजनागत व्यय

पहली योजना (1951–56)	58 प्रतिशत	छठी योजना (1980–85)	32 प्रतिशत
दूसरी योजना (1956–61)	35 प्रतिशत	सातवीं योजना (1985–90)	37 प्रतिशत
तीसरी योजना (1961–66)	34 प्रतिशत	आठवीं योजना (1992–97)	48 प्रतिशत
चौथी योजना (1969–66)	50 प्रतिशत	नवीं योजना (1997–02)	66 प्रतिशत
पांचवीं योजना (1974–79)	52 प्रतिशत	दसवीं योजना (2002–07)	65.6 प्रतिशत

ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना (1987) – ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना अवरोधन में सुधार लाने तथा प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए वर्ष 1987–88 में केन्द्र सरकार द्वारा शुरू की गई है। इस योजना में निम्नलिखित बातें शामिल हैं–

- लड़कों या लड़कियों के लिए शौचघर की सुविधाएं तथा एक बरामदा सहित सभी मौसम के लिए उपयुक्त कम से कम दो बड़े कमरे की सुविधा।
- प्रत्येक विद्यालय में कम से कम दो शिक्षक हों जिनमें से यथासम्भव एक महिला हो।
- ब्लैक बोर्ड, चार्ट, नक्शा, खिलौने तथा अन्य उपकरणों का प्रबन्ध

वर्ष 1987–88 से 1992–93 की अवधि में यह योजना देश की 91.05 प्रतिशत ब्लाकों में क्रियान्वित की गई जिनमें 91 प्रतिशत विद्यालय है।

न्यूनतम अधिगम स्तर – विद्यालयों में ग्राह्यता में सुधार लाने के लिए न्यूनतम अधिगम स्तरों को लागू करने के लिए एक कार्यक्रम तैयार किया जाना। केन्द्र सरकार ने इस कार्यक्रम को जारी करने के लिए शत–प्रतिशत सहायता प्रदान की है। इस कार्यक्रम में 2000 प्राथमिक विद्यालय, 10,000 शिक्षक तथा 3.86 लाख छात्र शामिल है। कक्षा में शिक्षण माहौल को समृद्ध बनाने के लिए भाषा, गणित और पर्यावरण अध्ययन इन तीन विषयों में शिक्षकों के लिए हस्त पुस्तिकाओं, शिक्षण की कार्य पुस्तकें तथा मूल्यांकन की सामग्री तैयार की गई थी। आंध्र प्रदेश, दिल्ली, गुजरात, हरियाणा, जम्मू कश्मीर, केरल तथा पंजाब में राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, एससीईआरटी तथा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान डाइट के शिक्षा संकाय सदस्यों को आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करके इस कार्यक्रम में शामिल किया गया।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम – (1994) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, कार्ययोजना 1992 के अनुसरण में प्राथमिक शिक्षा को सर्व सुलभ बनाने के उद्देश्य से एक नया कार्यक्रम चालू किया गया। इस कार्यक्रम में प्राथमिक शिक्षा के विकास को समग्रिता की दृष्टि से देखा गया तथा इसका उद्देश्य जिला विशेष के अनुसार नियोजक तथा पृथक लक्ष्य निर्धारण के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा के सर्वसुलभिकरण की नीति को लागू करना है। इस कार्यक्रम में उन जिलों को शामिल किया गया है जिनमें –

- महिला साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत (1991 की जनगणना) से कम है।
- समग्र साक्षरता अभियान प्राथमिक शिक्षा की मांग को पूरा करने में सफल हो।

प्रारम्भ में डीपीईपी मध्य प्रदेश, असम, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु तथा केरल के 42 जिलों में आरम्भ की गई। इसमें केन्द्र सरकार और राज्य सरकार की वित्तीय हिस्सेदार 85:15 है।

भारत में प्राथमिक शिक्षा की समस्यायें – प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकार इतने सालों से निरंतर प्रयासरत है लेकिन आज तक इसकी स्थिति उतनी अच्छी नहीं हो पायी जितनी होनी चाहिए थी। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कहीं न कहीं त्रुटि है।

भारत सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली शिक्षा नीति दोषपूर्ण है जिसका कारण यह है कि नीति वास्तविकता पर न आधारित होकर आदर्शवादिता पर आधारित है।

भारत में शिक्षा का प्रशासन दोषपूर्ण है –

- शिक्षा में पाठ्यक्रम संबंधी समस्या है। आज के पाठ्यक्रम संकीण, कठोर, अरुचिकर एवं एक मार्गीय है।
- शिक्षा में कुछ प्राकृतिक कठिनाइयां है जैसे गांवों का छोटा होना और दूर–दूर होना। इससे हर गांव में प्राथमिक विद्यालय नहीं खोले जा सकते है।
- शिक्षा की सबसे व्यापक समस्या धन का अभाव है। सरकार अन्य देशों की तुलना में शिक्षा में (प्राथमिक शिक्षा) कम व्यय करती है।
- प्राथमिक शिक्षा में प्रारम्भिक शिक्षकों का आभाव है।
- पर्याप्त मात्रा में विद्यालयों का अभाव है
- शिक्षा के क्षेत्र में अपव्यय और अवरोधन सम्बन्धी समस्या है।
- शिक्षा में प्रेरणा का अभाव पाया जाता है।

समाधान

- सरकार की शिक्षा नीति को वास्तविकता पर आधारित बनाना चाहिए वरना हम अपने लक्ष्य से विमुख हो जाएंगे।
- सरकार को शिक्षा के प्रशासन पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।
- शिक्षा के क्षेत्र के गलत पाठ्यक्रम को सुधारा जाय। विभिन्न आयोगों के सुझावों पर विचार किया जाना चाहिए।
- शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों का निवारण उपयुक्त ढंग से किया जाना चाहिए।
- सरकार को शिक्षा के लिए पर्याप्त बजट का प्रावधान करना चाहिए।
- अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिससे योग्य अध्यापकों की पूर्ति की जा सके।
- पर्याप्त विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।
- शिक्षा के क्षेत्र में अपव्यय पर रोक लगानी चाहिए।
- सरकार को इस सन्दर्भ में उचित पहल करनी चाहिए।

वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में सरकार द्वारा चलायें जा रहे कार्यक्रमों की भरमार है आवश्यकता है इनके क्रियान्वयन की। यदि कार्यक्रमों का क्रियान्वयन उचित ढंग से किया जाए तो प्राथमिक शिक्षा की तस्वीर आने वाले दिनों में कुछ और होगी। अतः इस मामले में अभी से जागरूकता लानी होगी तभी प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण का समना पूरा हो पाएगा।

(लेखक अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ हैं।)

ई–मेल : mayank129@rediffmail.com

शिक्षा का मूल अधिकार

देवाशीष उपाध्याय

मनुष्य को वातावरण में सामन्जस्यपूर्वक समायोजन करने, विकास करने, सम्मानपूर्वक जीवन निर्वाह करने तथा जीवन की सुरक्षा एवं संरक्षा करने के लिए रोटी, कपड़ा, मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना आवश्यक है। रोटी, कपड़ा और मकान से मनुष्य की शारीरिक सुरक्षा एवं विकास तो सम्भव है परन्तु मनुष्य के समुचित जीवन संचालन में शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक, सामाजिक, संयोगात्मक एवं नैतिक विकास आवश्यक है जो कि केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है।

पढ़ाई की कोई उम्र नहीं होती

विद्या (शिक्षा) के बिना मनुष्य का शारीरिक विकास तो संभव है, जो पशु का भी होता है। परन्तु मनुष्य को एक मनुष्य बनने, जिससे वह समाज के अनुकूल कार्य करने तथा समुचित रूप से समायोजन करने तथा मानव को सुन्दरतर, प्रगतिशील, सजग एवं प्रबुद्ध बनने हेतु सामाजिक, संवेगात्मक, मानसिक तथा नैतिक विकास आवश्यक है, जो शिक्षा के बिना सम्भव नहीं। शिक्षा मनुष्य की भावी सम्भावनाओं की पूर्ति के लिए अन्तरनिहित क्षमता का विकास करती है तथा मानसिक स्वास्थ्य एवं आंतरिक शक्तियों का समन्वित विकास कर आचरण में ऐसा सुधार एवं परिवर्तन ला देती है जिससे वह किसी भी परिवेश में सामंजस्य स्थापित करने में सफल होता है।

भारतीय शिक्षा का स्वर्णिम इतिहास रहा है। वैदिक काल से ही शिक्षा की ज्योति प्रज्जवलित कर भारतीय विद्वान जीवन को प्रकाशमान करने का प्रयास कर रहे हैं। अंग्रेज विद्वान एफ. डब्लू. थामस ने कहा कि "ऐसा कोई देश नहीं है जहां ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय से प्रारम्भ हुआ हो जितना भारत में या जिसने इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो, जितना भारत में" मनुष्य जीवन में शिक्षा के महत्वपूर्ण योगदान के कारण वैदिक, बौद्ध, मुस्लिम शासन काल में शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था थी, शिक्षा देना पुनीत कार्य तथा महान दान, समझा जाता था। गुरु–शिष्य के मध्य आदर्श एवं पिता–पुत्र के सम्बन्ध थे। ब्रिटिश काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ–साथ शिक्षा की व्यवस्था लड़खड़ा उठी। 1813 के आज्ञा पत्र की धारा–43 द्वारा भारत में "ब्रिटिश शिक्षा की आधारशिला" रखी गयी। 1835 में मैकाले की पक्षपातपूर्ण शिक्षा नीति ने भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली को गर्त में डाल कर विदेशी शिक्षा नीति का रोपण किया जिससे भारतीय शिक्षा की दशा दिन–प्रतिदिन दयनीय होती गयी। मनुष्य के आदर्श जीवन एवं सामाजिक समायोजन में शिक्षा के महत्वपूर्ण योगदान के कारण ही 1854 में चार्ल्स वुड ने कहा कि "कोई भी विषय हमारा ध्यान इतना आकर्षित नहीं करता जितना शिक्षा। भारत में शिक्षा की व्यवस्था करना हमारा पवित्र एवं पुनीत कर्तव्य है"। ब्रिटिश काल में शिक्षा के सुधार के लिए अनेक आयोगों का गठन हुआ। इसके बावजूद भी अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था का निर्णय ब्रिटिश शासक अपने तुच्छ तथा निहित स्वार्थ के कारण नहीं ले सके।

बीसवीं शताब्दी में अनेकों झंझावतों के बीच इतिहास ने करवट बदली, 15 अगस्त 1947 को देश स्वतन्त्रता का जश्न मना रहा था वहीं दूसरी ओर शिक्षा, प्रगति की ओर नई क्रान्ति के स्वर्णीय युग का सूत्रपात करने के साथ नई दिशा की ओर अग्रसर हो रही थी।

भारतीय संविधान के प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य तथा नागरिकों को स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, एकता, अखण्डता एवं बन्धुता जैसे उच्च आदर्शों के कारण शिक्षा को मूलभूत आवश्यकता मानते हुए इसके लिए कई अनुच्छेदों के अन्तर्गत उपबन्ध किया गया।

भारतीय संविधान के तीन मुख्य भाग नागरिकों के हितों की संरक्षा के लिए बने हैं। भाग–3 मूल अधिकार (अनु. 12–35), भाग – 4 राज्य की नीति के निदेशक तत्व (अनु. 36–51), भाग–4क मौलिक कर्तव्य (अनु. 51–क) (यह भाग मूल संविधान में नहीं था इसे 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया) संविधान के भाग–3 के मूल अधिकार को "भारत का अधिकार पत्र (Magna Carta)" कहा गया है। मूल अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त वे आधारभूत अधिकार हैं जो नागरिकों के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य हैं। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का बहुमुखी विकास सम्भव नहीं है। संविधान के भाग–3 के अनु. 15(1) में धर्म, जाति, लिंग, वर्ण, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी आधार पर नागरिकों के विरूद्ध कोई विभेद करने से राज्य को निषिद्ध करता है। अनु. 15(3), अनु. 15(1), और (2) में दिये गये सामान्य नियम का अपवाद है। यह उपबन्धित करता है कि अनु. 15 की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबन्ध बनाने से नहीं रोकेगी। स्त्रियों तथा बालकों की स्वाभाविक प्रकृति ही ऐसी होती है जिसके कारण उन्हे विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है। जैसे बालकों एवं स्त्रियों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा या उनको शोषण से बचाने के उद्देश्य से बनाये गये प्रावधान हैं। अनु. 15(4), अनु. 15(1) और (2) के सामान्य नियम का दूसरा अपवाद है। इसे प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम 1951 द्वारा जोड़ा गया। अनु. 15 (4) के अन्तर्गत राज्य किन्ही सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है।

अनु. 28(1) यह उपबन्धित करता है कि राज्यनिधि से पूरी तरह से पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी। अनु. 29 (1) भारत के राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासियों के किसी भाग को, अपनी विशेष भाषा लिपि या संस्कृति बनाये रखने का अधिकार होगा। अनु. 29(2) राज्य द्वारा संचालित या सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में किसी व्यक्ति को धर्म, जाति, रंग, भाषा के आधार पर प्रवेश के लिए मना नहीं किया जा सकता है। अनु. 30(1) धर्म या भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा, संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अधिकार होगा। अनु. 30(2) राज्य सरकारें अनुदान देते समय इन संस्थाओं से केवल इसलिए भेदभाव नहीं करेंगी कि ये संस्थाये अल्पसंख्यकों के द्वारा विशेष नियमों के अन्तर्गत चलायी जा रही हैं।

खुले में पढ़ाई करते हुए स्कूली बच्चे

मूल संविधान में सामान्य शिक्षा के मूल अधिकार से सम्बन्धित कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं था। उच्चतम न्यायालय ने एक निर्णय में कहा कि शिक्षा पाने का अधिकार अनुच्छेद 21 के अधीन एक मूल अधिकार है और सभी को शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य का उत्तरदायित्व है किन्तु उस पर एक परिसीमा लगा दी कि यह अधिकार 14 वर्ष के बच्चों के लिए ही सीमित है। उच्च शिक्षा के मामले में यह अधिकार राज्य की आर्थिक क्षमता पर निर्भर करेगा।

शिक्षा प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति के व्यवहार एवं विचार में समन्वित परिवर्तन एवं परिवर्द्धन तथा परिस्थितियों का योग्यता एवं दक्षतापूर्वक सामना करने तथा आंतरिक शक्तियों को उद्बुद्ध कर, सर्वांगीण विकास कर, मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनने में महत्वपूर्ण योगदान होने के कारण 86वां संविधान संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा संविधान में संशोधन कर एक नया अनु. 21क जोड़ा गया। जिसमें शिक्षा को संविधान के भाग–3 अध्याय–11 के अंतर्गत मूल अधिकार का दर्जा प्रदान किया गया। जिससे 6–14 वर्ष की आयु के बालकों को शिक्षा का मूल अधिकार प्रदान करना स्पष्ट एवं सुनिश्चित किया गया तथा अनु. 45 के स्थान पर एक नया अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया गया है। "राज्य 6 वर्ष की आयु के सभी बालकों के पूर्व बाल्यकाल की देखरेख और शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करने के लिए उपबन्ध करेगा" 6–14 वर्ष के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने हेतु माता–पिता अथवा अभिभावकों पर कर्तव्य अधिरोपित करने के उद्देश्य से 2001 में 93वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान के भाग–4क अन्तर्गत अध्याय–19 के अनुच्छेद 51क में 11वां मूल कर्तव्य जोड़ा गया जिसमें कहा गया कि "6–14 वर्ष के बालकों के माता–पिता और प्रतिपाल्य के संरक्षकों का यह कर्तव्य होगा कि वे उन्हें शिक्षा का अवसर प्रदान करें"।

मूल संविधान में शिक्षा राज्य सूची का विषय था। इसकी व्यवस्था करना राज्य सरकार का उत्तरदायित्व था। संघीय क्षेत्रों,

राष्ट्रीय महत्व की शिक्षा संस्थाओं तथा तकनीकी एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व था परन्तु मानव विकास एवं समायोजन में शिक्षा के महत्व को देखते हुए 1976 में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित किया गया जिससे केन्द्र तथा राज्य दोनों का शिक्षा की व्यवस्था करने का संयुक्त उत्तरदायित्व हो गया है। मूल संविधान में नागरिकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए राज्य पर कर्तव्य आरोपित करने के उद्देश्य से संविधान के भाग–4 अध्याय–18 के राज्य की नीति निदेशक तत्व के अनु. 45 में कहा गया कि राज्य संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर 6–14 वर्ष के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा तथा अनु. 46 में कहा गया कि राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों की शिक्षा तथा अर्थसम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषण से उसकी संरक्षा करेगा।

मूल अधिकार व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने तथा व्यक्ति को समाज में सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर पदस्थाति करने का मौलिक संवैधानिक अधिकार है। मूल अधिकार का जन्म जनता और राज्यशक्ति के बीच संघर्ष का परिणाम हैं। मूल अधिकार राज्य शक्ति के विरूद्ध गारण्टी है न कि सामान्य व्यक्तियों के अवैध कृत्यों के विरूद्ध। मूल अधिकार वाद योग्य तथा न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है जबकि राज्य के नीति निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं। मूल अधिकार तथा निदेशक तत्व संविधान के अन्तःकरण हैं।

ज्ञान मनुष्य का तृतीय नेत्र है जिससे व्यक्ति का मस्तिष्क सफलतापूर्वक समायोजन स्थापित करके समाज में स्वयं को उच्च स्थान पर पदस्थापित कर सम्मानपर्वूक जीवन व्यतीत करता है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपनी क्षमताओं का सर्वोत्तम सर्वांगीण विकास करता है। इन्द्रियों का उचित प्रयोग कर, आन्तरिक शक्तियों को बाहर लाकर सुयोग्य नागरिक बनता है जिससे समाज के साथ–साथ राष्ट्र प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। व्यक्ति को शिक्षा प्रदान करने का दायित्व राज्य, समाज तथा परिवार सभी पर है। राज्य तथा समाज के कार्यों का सफलता पूर्वक संचालन हेतु संविधान के अन्तर्गत शिक्षा को मूल अधिकार की श्रेणी प्रदान की गई है तथा नीति निदेशक तत्व के अन्तर्गत शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए निर्देश दिया गया है। परिवार पर कर्तव्य आरोपित करने हेतु शिक्षा को मूल कर्तव्य में स्थान दिया गया है।

जो माता–पिता, परिवार, राज्य, समाज बालक की शिक्षा की व्यवस्था नहीं करता वह शुत्र के समान है क्योंकि शिक्षा ही ऐसा दीपक है जो मनुष्य जीवन को प्रकाशवान कर पाशविकता से मानवता की ओर अग्रसर करता है। इसी कारण शिक्षा बालक का मूल अधिकार है और शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करना राज्य, समाज तथा परिवार का मौलिक कर्तव्य है।

(लेखक शिक्षा पर अनुसंधान कार्य में संलग्न हैं।)
ई–मेल : dewashish_upadhy@rediffmail.com

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का (जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर *निदेशक, प्रकाशन विभाग* को नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

..... पिन .....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110 066

शिक्षा का लक्ष्य : जन-जन का विकास

प्रतोष शुक्ला

शिक्षा के मामले में प्रारंभ से ही भारतवर्ष का दुनिया में प्रमुख स्थान रहा है। प्राचीन काल में भारत को जगतगुरु की संज्ञा दी जाती थी। सभ्यता के विकास के साथ-साथ भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन आए। इसके कुछ परिणाम तो सकारात्मक रहे लेकिन कुछ प्रभाव नकारात्मक भी रहे। अगर रायटर के एक सर्वेक्षण की बात करें तो बच्चों के मामले में भारत को संसार के सबसे खतरनाक देशों में छठा स्थान देने की बात कही गई है, वह चिंताजनक है। जिस देश के बच्चे शिक्षा से वंचित रहेंगे उसका विकास कैसे होगा? बच्चों को राष्ट्र का भविष्य कहा जाता है। इसलिए प्रत्येक बच्चे को प्राथमिक शिक्षा मुहैया कराया जाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। इसके अलावा महिलाओं और कमजोर वर्गों की शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है।

माता को बच्चे का प्रथम शिक्षक कहा जाता है। एक शिक्षित मां की संतान अधिक समझदार एवं प्रगतिशील हो सकती है। महिलाओं को शिक्षा के साथ-साथ रोजगार दिलाना भी आवश्यक है। शिक्षा की बात करें तो महिलाओं में शिक्षा का स्तर बढ़ने से कामकाजी महिलाओं की संख्या भी बढ़ी है। काम करने वाली महिलाओं की दर में बढ़ोत्तरी हुई है जो सन् 1981 के 19.7 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में 25.7 प्रतिशत हो गई है। एक शिक्षित महिला अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो सकती है। उल्लेखनीय है कि महिलाओं के अधिकारों के हनन के अनेक मामले इसलिए सामने नहीं आ पाते क्योंकि उनमें शिक्षा, जागरूकता और सुरक्षा का अभाव है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार देश के कई जिलों में महिला साक्षरता की दर तीस प्रतिशत से भी कम है। इसलिए राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के लिए इतनी कम महिला साक्षरता दर चिंता का एक बड़ा विषय है।

शिक्षा के बढ़ते अवसर – कोई नहीं रहेगा निरक्षर

इस बात का ध्यान रखते हुए लगभग पचास जिलों में नीची महिला साक्षरता दर में सुधार का लक्ष्य सरकार ने निर्धारित किया है। इन जिलों में महिला साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रवर्तित कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में यह कार्यक्रम पूरा हो चुका है और इसका मूल्यांकन भी किया जा चुका है। उड़ीसा में नौ जिलों में महिला साक्षरता दर काफी कम है। इन जिलों को एक विशेष परियोजना के अंतर्गत त्वरित महिला साक्षरता कार्यक्रम में शामिल किया गया है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 15 से 35 वर्ष आयु वर्ग की करीब 10,43,000 महिलाओं को साक्षर बनाने हेतु स्वयंसेवी संगठनों का भी सहारा लिया जा रहा है।

निरक्षरता उन्मूलन के लिए संपूर्ण साक्षरता अभियान ही राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की प्रमुख अवधारणा है। ये अभियान समयबद्ध, विशिष्ट क्षेत्र, सहभागिता, किफायती तथा उपलब्धिपरक हैं। इन्हें इस प्रकार से क्रियान्वित किया जाता है कि समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो सके। जिन लाखों निरक्षर लोगों ने व्यावहारिक शिक्षा की दक्षता हासिल की है वे बहुत नाजुक स्थिति में होते हैं और यदि ऐसे नवसाक्षर लोगों को साक्षरता से लगातार जोड़े न रखा जाए तो उनके फिर से निरक्षर हो जाने की आशंका बनी रहती है। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का उद्देश्य यह है कि संपूर्ण साक्षरता अभियान और साक्षरता के बाद के कार्यक्रम सफलतापूर्वक अनवरत शिक्षा–प्रक्रिया के रूप में जारी रहें और जीवनपर्यन्त साक्षरता के अवसर उपलब्ध कराते रहें। इस समय संपूर्ण साक्षरता अभियान लगभग 110 जिलों में लागू है जबकि साक्षरता–पश्चात् कार्यक्रम 177 जिलों में क्रियान्वित है। सतत शिक्षा योजना देश में संपूर्ण साक्षरता और साक्षरता–पश्चात् के कार्यक्रमों के लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयासों को सतत अधिगम प्रदान करता है। भौगोलिक दृष्टि से दूर–दराज के इलाकों में रहने वाले अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति या महिलाओं तथा वहां के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अवशेष साक्षरता कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। सतत शिक्षा कार्यक्रम के तहत अब तक 310 जिले सम्मिलित किए जा चुके हैं। अवशेष निरक्षरता की परियोजनाएं सुदृढ़ और लक्ष्य व्यापक हैं। यद्यपि संपूर्ण साक्षरता अभियान संपूर्ण देश में एक जन आंदोलन के रूप में चलाया गया लेकिन कई स्थानों पर यह प्राकृतिक आपदाओं तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति में कमी के चलते पूरा नहीं हो सका। साक्षरता दौर की सफलता के बावजूद अभी भी कुछ इलाकों में नीची महिला साक्षरता दर और अवशेष निरक्षरता मौजूद है। इस समस्या के निदान के लिए अवशेष निरक्षरता परियोजनाएं प्रारंभ की गई जो कई राज्यों में सफलता की ओर अग्रसर हैं।

शिक्षा को सभी लोगों तक पहुंचाना भी एक दायित्वपूर्ण कार्य है। केंद्रीय प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय अनेक संसाधनों के जरिए इस काम को पूर्ण करने की कोशिश कर रहा है। प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय विभिन्न स्तर के प्रयोक्ताओं के लिए साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा से संबंधित सामग्री प्रकाशित करता है। निदेशालय में एक प्रकाशन इकाई है जिनमें फोटो अनुभाग, कला अनुभाग, डेस्कटॉप, मुद्रण प्रणाली और जिल्दसाजी अनुभाग शामिल है। सरकार के अनेक प्रयासों के कारण अनेक उपलब्धियां हासिल की हैं। 2001 में साक्षरता दर 64.84 प्रतिशत रिकार्ड की गई जबकि 1991 में यह दर 52.21 प्रतिशत थी। इस तरह एक दशक के दौरान साक्षरता दर में 12.63 प्रतिशत अंकों की बढ़ोत्तरी हुई है। अब तक 12 करोड़ 3 लाख 50 हजार लोगों को साक्षर बनाया जा चुका है। इसके अतिरिक्त साक्षरता की वृद्धि दर ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों की तुलना में अधिक है। पुरुषों और महिलाओं की साक्षरता दरों में अंतर कम हुआ है। यह 1991 के 24.84 प्रतिशत से 2001 में घटकर 21.60 प्रतिशत हो गया है। महिला साक्षरता में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। स्त्री–पुरुष समानता और महिला सशक्तिकरण भी समाज में अपने सकारात्मक प्रभाव छोड़ रहा है जो हर्ष का विषय है। जहां तक पुरुष साक्षरता का सवाल है, सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में अब यह 60 प्रतिशत से अधिक है। एक उपलब्धि यह भी है कि देश के कुल 600 जिलों में से 597 को साक्षरता कार्यक्रम के अंतर्गत राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में शामिल करने में कामयाबी मिल गई है।

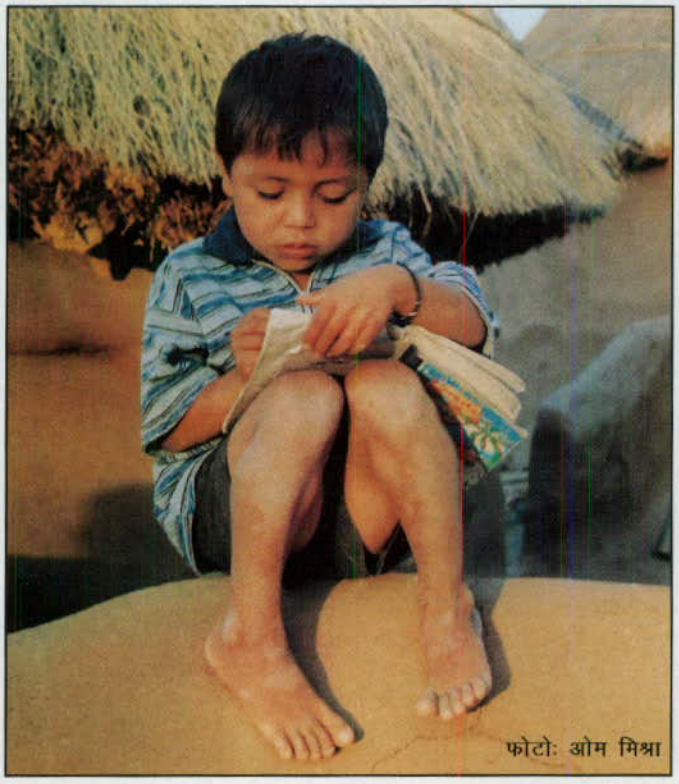

एकांत में पढ़ाई – लिखाई करता हुआ बालक

हमारा संविधान अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था पर ज़ोर देता है। संवैधानिक प्रावधान, संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार "राज्य विशेष सावधानी के साथ समाज के कमज़ोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जाति/जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों के

उन्नयन को बढ़ावा देगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के सामाजिक शोषण से उनकी रक्षा करेगा। "समाज के कमज़ोर वर्गों के लिए इसके साथ–साथ दूसरे संवैधानिक नियमों का अधिकाधिक उपयोग किए जाने की आवश्यकता है। सर्वशिक्षा अभियान की वर्तमान योजना के अधीन एन.पी.ई.जी.एल. प्राथमिक स्तर पर सहायता–प्राप्ति से वंचित और पिछड़ी बालिकाओं हेतु अतिरिक्त संसाधन मुहैया कराता है। यह कार्यक्रम शैक्षिक लिहाज से पिछड़े उन विकास खंडों में चलाया जा रहा है।" जहां ग्रामीण महिला साक्षरता की दर राष्ट्रीय औसत से कम है और लैंगिक भेदभाव राष्ट्रीय स्तर से अधिक है। साथ ही यह कार्यक्रम ऐसे जिलों के विकास खंडों में भी चलाया जा रहा है, जहां कम से कम 5 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जाति/जनजाति की है और जहां अनुसूचित जाति/जनजाति महिला साक्षरता की दर 1991 के आधार पर राष्ट्रीय औसत से दस प्रतिशत कम है। इसके अतिरिक्त अन्य सरकारी प्रयास भी ऐसे कार्यक्रमों को काफी बल प्रदान कर रहे हैं। उदाहरण के लिए दोपहर भोजन योजना एक ऐसा ही सफल और प्रेरणादायी कार्यक्रम है। इसमें गांव–देहात के उन लाखों बालकों और बालिकाओं पर ध्यान दिया जाता है जिन तक शिक्षा की पहुंच गरीबी जैसे कारणों के चलते काफी मुश्किल हैं। उदाहरण के लिए शिक्षाकर्मी कार्यक्रम का लक्ष्य बालिका शिक्षा पर प्रमुख रूप से ध्यान देने के साथ–साथ राजस्थान के दूर दराज के अर्द्ध–शुष्क और सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के सार्वत्रीकरण एवं गुणवत्ता में सुधार लाना है।

सामुदायिक पालीटेकनीक की महत्वाकांक्षी योजना के अंतर्गत क्षेत्र–विशेष में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके ग्रामीण और सामुदायिक विकास गतिविधियां चलाई जाती हैं। इसके तहत ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों और स्थानीय समुदायों को उनके उपयुक्त एवं अनुरूप प्रौद्योगिकी मुहैया कराने के लिए मंच उपलब्ध कराया जाता है। प्रशिक्षण देने में गांव–देहात के नौजवानों, अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों, महिलाओं, स्कूल छोड़ चुके आदमियों तथा अन्य वंचित वर्गों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है और जरूरत के मुताबिक रोज़गार प्राप्त करने में मदद दी जाती है। सामुदायिक पालीटेकनीक की योजना चुनिंदा डिप्लोमा स्तरीय संस्थाओं में वर्ष 1978–79 से लागू है। इसमें कौशल और निपुणता उन्मुख अनौपचारिक प्रशिक्षण, तकनीकी हस्तांतरण तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग होता है। बच्चों पर विशेष तौर पर ध्यान देने और आगे बढ़ाने एवं बच्चों को बहुमुखी प्रतिभा का धनी बनाने के लिए सरकार ने योजनाएं बना रखी हैं। राष्ट्रीय बाल भवन की स्थापना 5–16 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1956 में की गई थी। बच्चों की सृजन–क्षमता बढ़ाना तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना एवं साथ ही बच्चों में चुनौतियां स्वीकार करने, अनुभव हासिल करने, कुछ नवीन कर दिखाने और रचनाधर्मिता बढ़ाने की भावना पैदा करना बाल भवन के लक्ष्य हैं।

शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी विभिन्न परियोजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु भारत एवं विदेशों से प्राप्त होने वाली छोटी से छोटी सहायता (दान) राशि की सुगमता से प्राप्ति के लिए सरकार ने समिति पंजीयन अधिनियम, 1860 के अंतर्गत एक पंजीकृत सोसायटी के रूप में 'भारत सहायता कोष' का गठन किया। 09 जनवरी 2003 को 'प्रवासी भारतीय दिवस' के अवसर पर आयोजित समारोह में विधिवत् प्रारंभ किया गया यह कोष शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित सभी गतिविधियों और क्रियाकलापों के लिए निजी संगठनों, व्यक्तियों, उद्योग जगत, केंद्र एवं राज्य सरकारों, प्रवासी भारतीयों एवं भारतीय मूल के लोगों से दान/अंशदान तथा सहायता राशि प्राप्त कर सकेगा। साथ ही पिछले वर्षों के दौरान शिक्षा के लिए आबंटन में वृद्धि हुई है। इस आबंटन का सही उपयोग करके ही जनता को शिक्षित और समझदार, जागरूक और प्रगतिशील बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मध्यान्ह भोजन योजना को भी और अधिक पहुंच से युक्त बनाने के भी प्रयास जारी हैं। उदाहरण के लिए कई जगहों पर भोजन पकाने का कार्य महिलाओं के स्वसहायता समूह करते हैं। शहरी क्षेत्रों में स्वयंसेवी संगठनों ने यह कार्य संभाल रखा है। कार्यक्रम की कारगार और कुशल निगरानी के लिए राष्ट्रीय, राज्य, जिला और ब्लाक स्तर पर स्थायी निगरानी समितियों का गठन किया गया है। 1989 में प्रारंभ हुआ महिला समाख्या कार्यक्रम महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा की व्यवस्था करता है। आज महिला समाख्या नौ राज्यों के 63 जिलों में चलाई जा रही है।

महिला समाख्या की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही है कि इससे बुनियादी स्तर पर महिला सशक्तिकरण की नींव डाली जा सकी है। ग्रामीण औरतों के स्वरूप में एक प्रकार का रचनात्मक परिवर्तन भी देखने को मिला है। राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा परियोजना भी शिक्षा के प्रचार–प्रसार और शैक्षिक विकास से संबंधित है। विदेशी सहायता प्राप्त इस परियोजना के लिए शत–प्रतिशत धनराशि संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष से प्राप्त हुई थी। यह परियोजना उच्च शिक्षा के साथ–साथ वयस्क शिक्षा के क्षेत्र में भी चलाई जा रही है। परियोजना का चौथा चक्र वर्ष 2002 में पूरा हो गया था। अब सरकार इस बात की भी कोशिश कर रही है कि जनसंख्या शिक्षा को फिर से परिकल्पित ढांचे से जोड़ने वाले घटकों पर ध्यान दिया जाए। स्पष्ट है कि शिक्षा से संबंधित सभी घटकों पर एक साथ ध्यान देकर ही पूरे राष्ट्र को शिक्षित बनाया जा सकता है। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि शिक्षा की पहुंच एक–एक व्यक्ति तक हो और सब तक यह पहुंच एक समान और बराबर रूप में हो। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ एक ऐसी शिक्षा–प्रणाली को बढ़ावा देने की जरूरत है जो हमारे राष्ट्र को मजबूत बनाए और राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया को एक नई ऊर्जा प्रदान करे।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार है)

ई–मेल : pratosh2001@yahoomail.com

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के बढ़ते कदम

नवीन पंत

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य और निःशुल्क बनाने का सरकार का प्रयास सराहनीय और क्रान्तिकारी है। इससे सबसे अधिक लाभ ग्रामवासियों को होगा। देश में खुले 10 लाख से अधिक प्राथमिक स्कूलों में से 86 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। किसी समय ग्रामीण क्षेत्रों के छात्र किसी छप्पर या पेड़ के नीचे बैठकर शिक्षा ग्रहण करते थे। अब सभी गांवों में पक्के स्कूल बनाए जा रहे हैं। लड़कियों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम और कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना शुरू की गई है।

हमारे देश की बहुसंख्यक जनता गांवों में रहती है। गांधीजी का तो मानना था कि असली भारत गांवों में बसता है। स्वतंत्रता पूर्व गांवों की उपेक्षा की जाती थी। स्वतंत्रता के बाद गांवों की दशा सुधारने की अनेक योजनाएं बनी। इनमें प्रमुख सामुदायिक विकास योजना, जिसकी चरम परिणति विकास खंडों की स्थापना में हुई। विकास खंडों ने गांवों में विकास की चेतना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। पचास और साठ के दशक में देश के अनेक भागों में श्रमदान से सड़कों, पाठशालाओं, पंचायत घरों आदि का निर्माण किया गया।

हमारे संविधान निर्माता शिक्षा को समुचित महत्व देते थे अतः उन्होंने संविधान में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में राज्य को यह सलाह दी कि वह संविधान लागू होने के दस वर्षों के भीतर देश में 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए प्रयास करे।

लेकिन देश को इस दौरान अनेक नई और गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा। देश में खाद्यान्नों की भीषण कमी हो गई। चीन ने पंचशील का उल्लंघन करते हुए भारत पर हमला कर दिया। बाद में चीन की एक तरफा युद्ध विराम की घोषणा से युद्ध तो समाप्त हो गया लेकिन भारत को अपना रक्षा खर्च काफी बढ़ाना पड़ा। इसके बाद पाकिस्तान ने पहले कच्छ में और फिर जम्मू–कश्मीर पर हमला किया। देश ने साहस और दृढ़ता से पाकिस्तान के मसूंबों को विफल किया। लेकिन इसके बाद भी पाकिस्तान कभी लाखों शरणार्थियों को भारत में शरण लेने को मज़बूर करके, कभी कश्मीर में युद्ध करके और कभी कारगिल में घुस पैठ करके समस्या पैदा करता रहा। इसके कारण भारत को अपनी विकास एवं शिक्षा की प्राथमिकताएं बदलनी पड़ी।

तथापि उसने शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्रता के बाद उल्लेखनीय प्रगति की है। देश में उच्च शिक्षण संस्थानों और विश्वविद्यालयों की बढ़ती संख्या इसका प्रमाण है। लेकिन यह प्रगति उच्च शिक्षण संस्थानों तक सीमित रही। दुर्भाग्यवश प्रारम्भिक अथवा प्राथमिक शिक्षा की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। संभवतः इसका प्रमुख कारण साधनों की कमी था। लेकिन 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने का लक्ष्य हमारे नीति निर्माताओं की आंखों से कभी अलग नहीं हुआ।

भारत प्रारम्भ से ही प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य और निःशुल्क बनाने का पक्ष धर रहा है। इसके अलावा छोटे बच्चों–छह वर्ष से कम आयु के बच्चों की समुचित देखभाल और 2015 तक सभी बच्चों, विशेष रूप से लड़कियों को अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने का भी फैसला किया गया।

भारत में प्राचीन काल से ही विद्या को सर्वोत्तम धन माना जाता है। विद्या धन को न तो कोई चुरा सकता है और न कोई खो सकता है। विद्या धन देने पर कम नहीं होता बल्कि बढ़ता है। इतिहास गवाह है कि हज़ारों वर्ष पहले देश ने आयुर्वेद के क्षेत्र में धन्वतरि, चरक, सुश्रुत जैसे मनीषियों को जन्म दिया, जिन्होंने मानवता को बीमारियों से मुक्ति दिलाने का ऐतिहासिक कार्य किया। विज्ञान के क्षेत्र में बाराहमिहिर, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य ने नए कीर्तिमान स्थापित किए। भारतीय विद्वानों ने विश्व को दशमलव, शून्य और गणित के अनेक सूत्र प्रदान किए। भारतीय अंक जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय अंक कहा जाता है, भारत से ही अरब देश होते हुए यूरोप पहुंचे और अब सम्पूर्ण विश्व में उनका प्रयोग किया जाता है। कहने का तात्पर्य केवल यह है कि पठन पाठन और ज्ञान अर्जन हमारी जीवन शैली और संस्कृति का अभिन्न अंग है।

मानव संसाधन के पूर्ण विकास के लिए 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। इसमें 1992 में कुछ परिवर्तन किए गए। परिवर्तनों के बाद 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को 21वीं सदी के प्रारम्भ से पहले अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा सुलभ कराने और सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने का वचन दिया गया। इसके अलावा शिक्षा की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार लाने पर जोर दिया गया। जिससे कि छात्र प्राथमिक स्कूल छोड़ते समय शिक्षा का आवश्यक स्तर प्राप्त कर ले। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस बात को स्वीकार किया गया कि सामाजिक एवं क्षेत्रीय विषमता को दूर करने, स्त्री पुरूषों के बीच की खाई को पाटने और पिछड़ों एवं अल्प संख्यकों को उचित स्थान दिलाने में

शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश सभी के लिए शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वचनबद्ध है। उसकी वचनबद्धता का प्रमाण यह है कि शिक्षा के लिए राष्ट्रीय बजट में निरन्तर वृद्धि की जा रही है। 1950–51 में राष्ट्रीय बजट में शिक्षा का हिस्सा 0.68 प्रतिशत था जो 2002–03 में बढ़कर 4.2 प्रतिशत हो गया। दसवीं योजना के अन्त तक यानी 2007 तक इसके 6 प्रतिशत हो जाने की आशा है।

भारत ने छह वर्ष से छोटे बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा, पौष्टिक आहार और स्कूल पूर्व शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए 1975 में समन्वित बाल विकास सेवाएं शुरु कीं। इस परियोजना के अन्तर्गत क्षेत्र के छह वर्ष से छोटे बच्चे प्रतिदिन आंगनबाड़ी में खेलकूद, मनोविनोद तथा अन्य दिलचस्प गतिविधियों में तीन घंटे बिताते है। यहां समय–समय पर उनके स्वास्थ्य की जांच की जाती है, उन्हें बीमारियों से बचाने के लिए टीके लगाए जाते हैं, उन्हें सहायक (पौष्टिक) आहार दिया जाता है और उन्हें स्कूल जाने के लिए तैयार किया जाता है।

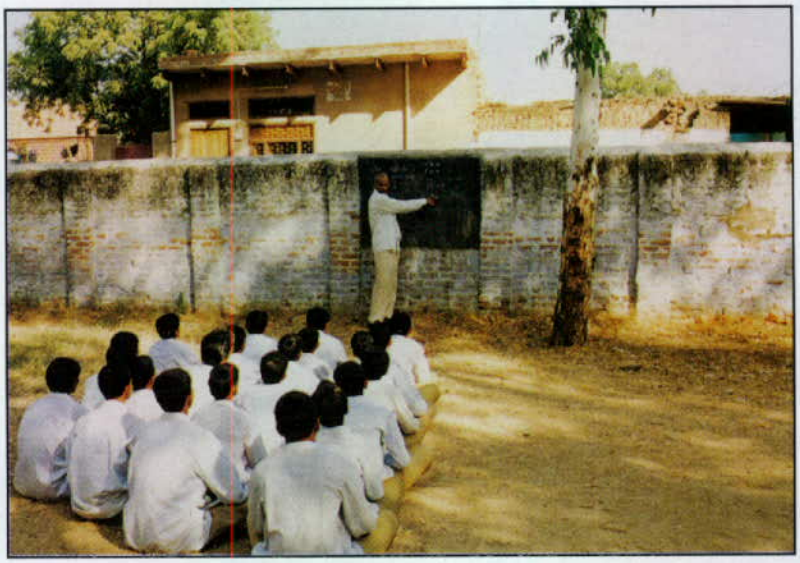

क्या फर्क पड़ता है! पढ़ाई तो करनी है

जोमटीन और डाकर घोषणाओं तथा राज्य के नीति के निदेशक तत्वों के संबंध में अपने दायित्वों को पूरा करने और देश के करोड़ों बच्चों को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने 2002 में संविधान में 86वां संशोधन किया। इसके अन्तर्गत 6 से 11 वर्ष तक के सभी बच्चों को बिना किसी कठिनाई या बाधा के शिक्षा सुविधा मिले। इसलिए इस अधिकार को मूल अधिकार बना दिया गया। इसके लिए संविधान में एक नया अनुच्छेद 21 ए जोड़ दिया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य कानून द्वारा निर्धारित ढंग से छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।

देश में अनिवार्य निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा शुरू करना एक महान और जटिल कार्य था। इसके लिए काफी संसाधनों की जरूरत थी। सरकार ने इस समस्या को हल करने के लिए 8.7.2004 से आय कर, उत्पादन शुल्क और सेवा कर पर 2 प्रतिशत शिक्षा अधिभार लगा दिया। इस अधिभार से प्राप्त समस्त राशि एक विशेष कोष–प्राथमिक शिक्षा कोष पीएसके में जमा कर दी जाती है।

इस कोष में जमा राशि का उपयोग सर्व शिक्षा अभियान और बच्चों को दोपहर का भोजन देने के अतिरिक्त किसी अन्य मद में नहीं किया जा सकता। वित्त मंत्रालय के अनुसार शिक्षा अधिभार के रूप में 2004–2005 में 43318.51 करोड़ रु. 2005–06 में 7637.75 करोड़ रु. और 2006–07 में (फरवरी 2007 तक अस्थायी) 6833 करोड़ रु. एकत्र हुए थे। शिक्षा अधिभार लगने से प्राथमिक शिक्षा के लिए संसाधनों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

संशोधित अनुमानों के अनुसार 2004–05 में इस मद में 5010 करोड़ रु. प्राप्त हुए। बजट अनुमानों के अनुसार 2007–08 में इस मद में 10,393 करोड़ रु. प्राप्त होने की आशा है।

इसी के साथ सरकार ने सभी के लिए शिक्षा की एक बड़ी योजना बनाई है। इसमें समाज के सभी वर्गों, बच्चों, किशोरों, वयस्कों सभी को शिक्षित करने की व्यवस्था है।

संविधान में 86वां सशोधन पारित होने से पूर्व सरकार ने उसकी तैयारी के रूप में 2001–02 में शिक्षा का एक विशाल कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान शुरू किया। इस अभियान के अन्तर्गत अगले तीन–चार वर्षों के दौरान 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को पाठशालाओं में दाखिला दे दिया जाएगा। इस अभियान को शुरू करते समय प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले स्वयंसेवी संगठनों, शिक्षा कर्मी और लोक जुम्बिश के अनुभवों को ध्यान में रखा गया।

सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य हर बच्चे के लिए उसकी विशेष आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त वातावरण में शिक्षा की व्यवस्था करना है। इस स्कीम में विकलांगता से पीड़ित बच्चों को यथासंभव सामान्य स्कूल में शिक्षा दी जाती है।

सर्व शिक्षा अभियान समूचे देश में क्रियान्वित किया जा रहा है। अभियान के अन्तर्गत सभी निजी कार्य योजनाएं 2004–05 में मंजूर की गई थी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत नये स्कूल खोले जाते हैं, वर्तमान स्कूलों में अतिरिक्त कमरे बनाए जाते हैं। पुराने शौचालयों की मरम्मत एवं अतिरिक्त शौचालयों, पानी पीने की उपयुक्त व्यवस्था, प्रतिदिन प्राध्यापकों की नियुक्ति बढ़ाई जा रही है। स्कूलों को बेहतर शिक्षण और ज्ञान प्राप्त करने की सामग्री भी दी जा रही है।

सर्व शिक्षा अभियान

दसवीं योजना में सशिष्य के लिए 17000 करोड़ रुपये का परिव्यय स्वीकृत था जब कि अब तक कुल वास्तविक खर्च 35743 करोड़ 14 लाख रुपये हुआ है।

- सन् 2010 तक 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को स्कूलों में दाखिला दे दिया जाएगा।
- प्रत्येक बस्ती के एक किलोमीटर की दूरी के भीतर प्राथमिक स्कूल की स्थापना।
- प्रत्येक 40 छात्रों के वर्ग के लिए एक अध्यापक की नियुक्ति।
- प्राथमिक पाठशालाओं के अध्यापकों को वर्ष में 20 दिन का प्रशिक्षण।
- शिक्षा गारंटी स्कीम के तहत राज्यों के मानकों के अनुसार नये स्कूलों की स्थापना।
- सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सन् 2000 के बाद प्राथमिक स्कूलों में भर्ती की दर 14.8 प्रतिशत बढ़ी।
- सन् 2001 में 6–11 वर्ष के 4 करोड़ 22 लाख बच्चे स्कूल नहीं जाते थे, 2007 में ऐसे बच्चों की संख्या घटकर 39 लाख 76 हजार रह गई।
- लड़कियों की भर्ती की दर 43.7 प्रतिशत (2001) से बढ़कर 46.7 प्रतिशत (2004) हुई। लड़के–लड़कियों की भर्ती का अंतर 19 से घटकर 6 प्रतिशत हुआ।
- अनुसूचित जाति और और अनुसूचित जनजाति का 2001–2002 के दौरान भर्ती अनुपात में क्रमशः 25.6 और 22.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
- सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत 2006–2007 तक 1,33,928 नये प्राथमिक स्कूल खोलने का लक्ष्य था जबकि 31.3.2007 तक 1,10,217 (83.2 प्रतिशत) स्कूल खोले जा चुके थे।
- इस अवधि में 125918 स्कूलों की इमारते बनाने का लक्ष्य था जबकि 10125 स्कूलों की इमारतों का निर्माण पूरा किया गया।
- 6 करोड़ 69 लाख मुफ्त पुस्तकें देने का लक्ष्य था जबकि 6 करोड़ 40 लाख पुस्तकें वितरित की गई है।
- 10 लाख 12 हजार अध्यापक नियुक्त करने का लक्ष्य था 7 लाख 95 हजार शिक्षक नियुक्त किए गए।
- एक करोड़ 26 लाख 89 हजार 299 छात्रों को दाखिला देने का लक्ष्य था जबकि केवल 69 लाख छात्रों (54 प्रतिशत) को दाखिला दिया जा सका।
- बच्चों को दोपहर के भोजन में 450 कलोरी और 12 ग्राम प्रोटीन दिया जाता है। इसके अलावा इसमें लोहा, फोलिक एसिड और विटामिन–ए जैसे सूक्ष्म पौष्टिक तत्व भी पर्याप्त मात्रा में दिए जाते हैं।

प्रारम्भिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम–यह सर्व शिक्षा अभियान का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका उद्देश्य इस अभियान को अतिरिक्त समर्थन प्रदान करना है। यह कार्यक्रम देश के शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के विशेष प्रयास करता है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना–यह योजना 2004–2005 में शुरू की गई। इसके अन्तर्गत शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े खंडों में लड़कियों के 75 स्कूल खोलने का लक्ष्य है।

शिक्षा गारंटी स्कीम और वैकल्पिक एवं परिवर्तित शिक्षा स्कीम–यह स्कीम उन बच्चों के लिए है जो ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहां स्कूल नहीं है अथवा जो विकलांगता या अन्य किसी कारणों से स्कूल नहीं जा सकते। इस स्कीम के अन्तर्गत शिक्षण की लचीली रणनीतियां बनाई जाती हैं।

सर्व शिक्षा अभियान के कारण शिक्षा के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ी है। अब अधिकाधिक लोग अपने बच्चों को स्कूल भेज रहे हैं। स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में कमी आई है।

प्राथमिक स्कूलों में न केवल शिक्षा मुफ्त है बल्कि छात्रों को दोपहर का भोजन भी दिया जाता है। इसके अलावा प्रतिभा सम्पन्न और जरूरत मंद छात्रों को छात्रवृतियां दी जाती हैं। सभी लड़कियों और अ.जा. एवं अ.ज.जा के सदस्यों को पाठ्य पुस्तकें मुफ्त दी जाती हैं।

बचपन में आर्थिक या अन्य कारणों से शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रहे लोगों के लिए सम्पूर्ण देश में साक्षरता अभियान चलाया जा रहा है। इस अभियान ने अब एक जन आन्दोलन का रूप ले लिया है। इसमें हज़ारों स्वयं सेवक, गैर सरकारी संगठन और राज्य सरकारों के अधिकारी और कर्मचारी भाग ले रहे हैं।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना: एक विश्लेषण

डॉ. अनिता मोदी

प्रख्यात कृषि वैज्ञानिक श्री स्वामीनाथन् ने भारत में बढ़ती बेराजगारी की समस्या के शीघ्र समाधान की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए बताया कि, "आज नौकरियों के लिए असमी और बिहारी लड़ रहे हैं और वह समय दूर नहीं है जब नौकरियों के लिए लड़ाई पूरे भारत में छिड़ जायेगी।" उन्होंने देश के नीति निर्धारकों को चेतावनी देते हुए कहा कि यदि भूमिहीन गरीबों को नौकरी नहीं मिली तो नौकरियों के लिए क्षेत्रीय टकराव आम हो जाऐंगे। इस स्थिति से बचने के लिए तथा बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने हेतु केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी विधेयक 2004 को अपनी मंजूरी प्रदान कर दी है। विश्व में भारत प्रथम देश है जिसने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी बिल पारित कर रोजगार को कानूनी अधिकार की मान्यता दी है। इस अधिनियम के महत्व को स्वीकार करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी कहा है कि रोजगार गारन्टी बिल सिर्फ भारत के लिए ही ऐतिहासिक नहीं है वरन् यह पूरे विश्व के लिए एक अनूठा बिल है। यह बिल सिद्ध करता है कि रोजगार पाना लोगों का अधिकार है।

रोजगार गारंटी योजना – काम मिले रोजाना

यह तो सर्व विदित ही है कि भारत की जीवन शक्ति का आधार ग्रामीण समाज है। अतः गांवों का विकास किये बिना देश का विकास संभव नहीं है। अभी भी देश की करीब 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में ही निवास करती है। किन्तु गांवों में रोजगार अवसरों का अभाव होने के कारण गांव वाले गरीबी, बेरोजगारी व भुखमरी जैसी समस्याओं से त्रस्त हैं। रोजगार गारन्टी कानून गांवों में विद्यमान गरीबी व बेरोजगारी उन्मूलन की दिशा में एक साहसिक कदम है। यह अधिनियम अस्थायी तौर पर शारीरिक श्रम करने के इच्छुक किसी भी ग्रामीण को न्यूनतम निर्धारित मजदूरी दर पर रोजगार की वैधानिक गारंटी प्रदान करता है। इस योजना के अन्तर्गत हर इच्छुक ग्रामीण परिवार से एक व्यक्ति को वर्ष में 100 दिन के रोजगार की गारंटी होगी तथा उन्हें 60 रुपये प्रतिदिन के आधार पर मजदूरी दी जायेगी। रोजगार के लिए आवेदन करने वाले वयस्क को पन्द्रह दिन के अन्दर सार्वजनिक कार्यों में रोजगार प्रदान किया जायेगा। रोजगार नहीं देने की स्थिति में उसको बेरोजगारी भत्ता दिये जाने जाने का प्रावधान है। वर्तमान में इस योजना को दो सौ जिलों में लागू किया गया है तथा अगले पांच वर्षों में इसे सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित करने का प्रावधान है। निसंदेह रूप से, इस योजना के प्रभावी क्रियान्वयन के माध्यम से भारत के अधिकांश ग्रामीण गरीब परिवारों को गरीबी रेखा की परिधि से बाहर निकाल पाना संभव होगा, जिससे भूख व कुपोषण जैसी समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो जायेगा। यही नहीं, इस योजना के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की तरफ पलायन प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगेगा। ग्रामीणजन गांवों में रोजगार उपलब्ध नहीं होने के कारण आजीविका–अर्जन हेतु शहरों में जाने को विवश है। इस रोजगार गांरटी योजना में आशा की यह किरण दिखाई देती है कि ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार मिल जाने पर इन गांववासियों को गांव छोड़ने के लिए मजबूर नहीं होना पड़ेगा। यही नहीं, इस परिवर्तन के कारण बढ़ते शहरीकरण से उत्पन्न समस्याओं जैसे प्रदूषण, मलिन बस्ती, आवास की समस्या, भीड़भाड़ व आधारभूत सुविधाओं पर बढ़ते अनियंत्रित बोझ को भी नियंत्रित किया जाना संभव हो पायेगा।

इस गारंटी योजना के अन्तर्गत श्रमिकों को गांवों में ही स्थायी परिसम्पत्तियों जैसे वाटरशेड प्रोग्राम, जल–संरक्षण कार्य, सड़क, पुलिया, पंचायत घरों का निर्माण, बाढ़ नियंत्रण, तालाब–निर्माण व पुराने तालाबों के जीर्णोद्धार, वन–सरंक्षण व वृक्षारोपण आदि कार्यों में नियोजित करने से ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी। गांवों का चहुंमुखी विकास संभव होने के कारण राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आदर्श राम–राज्य की परिकल्पना को साकार किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त गरीब वर्गों को रोजगार उपलब्ध होने पर उनकी

शक्ति व सामर्थ्य में अभिवृद्धि होगी, आर्थिक विषमताओं की दरारें कम होने से हम सामाजिक–आर्थिक न्याय की दिशा में अग्रसर होंगे। गौरतलब है कि इस अधिनियम में क्रियान्वयन का दायित्व मुख्य रूप से ग्राम सभाओं, ग्राम पंचायतों व पंचायत समितियों को सौंपा गया है। अतः इस योजना के माध्यम से इनका सुदृढीकरण होने से 'विकेन्द्रीकरण' के लक्ष्य की प्राप्ति संभव है। इस अधिनियम के तहत महिलाओं को भी रोजगार मिलने की संभावना बढ़ जायेगी जिससे वे आर्थिक स्वतंत्रता व स्वावलंबन के मार्ग पर चल पायेगी। स्पष्ट है कि यह अधिनियम महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य–प्राप्ति में भी मील का पत्थर साबित होगा।

ग्रामीण विकास मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार फिलहाल इस योजना के अर्न्तगत एक करोड़ अठारह लाख परिवारों को रोजगार उपलब्ध करवाया जा चुका है। मंत्रालय ने यह अनुमान लगाया है कि देश के 27 राज्यों के 200 जिलों में लागू इस योजना के तहत ग्रामीण परिवारों की कुल संख्या 5 करोड़ 40 लाख थी जिनमें से 1 करोड़ 65 लाख परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे थे। हर्ष का विषय है कि आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, मेघालय, पंजाब, सिक्किम व तमिलनाडु में जितने ग्रामीण परिवारों ने रोजगार की मांग की थी उन सभी को रोजगार उपलब्ध करा दिया गया है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय के मुताबिक वर्ष 2006–07 में इस योजना की क्रियान्विति के लिए केन्द्र द्वारा 6138 करोड़ 2 लाख रुपये तथा राज्यों द्वारा 464 करोड़ 51 लाख रुपये अर्थात कुल 6602 करोड़ 53 लाख रुपये उपलब्ध कराये गये। इस योजना के अन्तर्गत 4 लाख 49 हजार कार्य प्रारम्भ किये गये जिनमें से 1 लाख 58 हजार कार्य पूर्ण हो गये हैं। इस योजना के अन्तर्गत मुख्य रूप से बाढ़ नियंत्रण व सुरक्षा, अकाल रोकना, भूमि विकास, ग्रामीण जुड़ाव व जल संरक्षण कार्यों को सम्पादित किया गया। इस योजना के क्रियान्वयन के एक वर्ष पूर्ण होने पर 5365.37 लाख मानव दिवसों का रोजगार सृजित हुआ जिसमें महिलाओं की भागीदारी 40 प्रतिशत रही। चालू वर्ष के लिए 9111 करोड़ 73 लाख रुपये का प्रावधान इस योजना के क्रियान्वयन हेतु किया गया जिसमें से 3671 करोड़ 46 लाख रुपये व्यय किये जा चुके हैं।

इस योजना के मूल्याकंन संबंधी रिपोर्ट दिल्ली स्थित गैर सरकारी संस्था विज्ञान और पर्यावरण के द्वारा जारी की गई है। इस रिपोर्ट में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि इस योजना के अन्तर्गत जल संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्य को नजरअंदाज करते हुए किसी भी राज्य में इसको प्राथमिकता पर नहीं रखा गया है जबकि कानून के अन्तर्गत इसके बारे में स्पष्ट दिशा–निर्देश दिए हुए हैं। इस रिपोर्ट के मुताबिक इस योजना के अन्तर्गत उन कार्यों को प्राथमिकता प्रदान की गई है जो ठेकेदार व बिचौलिए के माध्यम से संपन्न कराए जा सकते हैं और ये कार्य योजना के प्रारुप में आठवें–नौवें स्थान पर दर्ज है। इस रिपोर्ट में यह भी रेखांकित किया गया है कि सत्रह राज्यों में जल संरक्षण जैसा महत्वपूर्ण कार्य केवल तीन प्रतिशत तक सम्पादित हुआ है जबकि नौ राज्यों में तो इस कार्य को प्राथमिकता सूची में समावेशित तक नहीं किया गया है। यही नहीं, इस योजना के क्रियान्वयन की समीक्षा हेतु किये गये अनेक अध्ययनों के निष्कर्ष चौंकाने वाले हैं। इस योजना के क्रियान्वयन की समीक्षा के दौरान हजारीबाग जिले के कई गांवों में अनेक ऐसे कार्ड देखने को मिले जिनमें कोई भी कॉलम सही तरीके से नहीं भरा हुआ था। यही नहीं, कार्डो को अधूरा भी रखा जाता है ताकि लोगों के पास बेरोजगारी भत्ता का दावा करने के लिये कोई पुख्ता सबूत नहीं रहे। यह भी पाया गया है अनेक मजूदरों के कार्ड पंचायत सेवक या उनके एजेंटों के पास ही रहते हैं। इस योजना के मूल्यांकन के दौरान यह तथ्य भी अभर कर सामने आया है कि मजदूरों को दो–चार दिन का काम देकर कार्ड पर ज्यादा दिन दर्ज कर मजदूरी का घोटाला किया जाता है। झारखण्ड जैसे आदिवासी और पिछड़े राज्य में इस योजना की भ्रष्टतम स्थिति देखने को मिलती है। पंचायतों के अभाव में इस योजना की बंदरबांट व्यापक पैमाने पर चल रही है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट है कि इस योजना के सफल क्रियान्वयन हेतु कुछ अवांछनीय तत्वों को नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। सर्वप्रथम, इस योजना को भ्रष्टाचार की काली छाया से दूर रखने के लिए प्रभावी नियंत्रक व्यवस्था करनी होगी। मजदूरों के उपस्थिति रजिस्टर, मजदूरों के भुगतान व निर्माण कार्यों में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होनी चाहिये। ऐसी कोई गड़बड़ी पाये जाने पर दोषी पर सख्त कानूनी कार्यवाही का प्रावधान अपेक्षित है। दूसरे, इस योजना के अन्तर्गत सम्पादित किये जाने वाले कार्यों का चयन बहुत ही सावधानी व सजगता से किया जाना आवश्यक है। इस रोजगार कार्यक्रम को उत्पादकता कार्यक्रम से जोड़ना नितान्त आवश्यक है। ऐसे निर्माण कार्यों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो वर्तमान में रोजगार प्रदान करने के साथ गांवों में आजीविका, पर्यावरण–संरक्षण व बुनियादी सुविधाओं के विकास को भी सुनिश्चित करें। ऐसे अनुत्पादक कार्यों जैसे मिट्टी को इधर से उधर डालना, गड्डा खोदकर मिट्टी अन्यत्र डालना आदि पर लगाम कसनी होगी। तीसरे, हमें इस तथ्य पर भी गौर करना होगा कि बहुत सारे ग्रामीणजनों को इस योजना की जानकारी नहीं है। अतः जानकारी के अभाव में ये ग्रामीणजन इस योजना के लाभों से वंचित रह गये हैं। अतः ग्रामीण इलाकों में इस योजना के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने का कार्य युद्धस्तर पर किया जाना आवश्यक है।

निष्कर्ष रूप में इस योजना के कार्यान्वयन में सबसे बड़ी चुनौती, भ्रष्टाचार, प्रशासन के प्रति अविश्वास और इस योजना को सूचना के अधिकार के साथ नहीं जोड़ना है। इन कमियों का निराकरण करके ही इस महत्वाकांक्षी योजना से अपेक्षित परिणाम प्राप्त होने की संभावनाएं प्रबल हो सकती है।

(लेखिका पीजी कालेज में अर्थशास्त्र की विभागाध्यक्ष हैं)

ई–मेल : Anita-s-modi@yahoo.com.in

भारत का विदेश व्यापार

(स्वतंत्रता दिवस की 60वीं वर्षगांठ)

गोपाल के. पिल्लै

उन्नीस सौ सैंतालीस में देश आजाद होने के बाद भारत का विदेश व्यापार विकसित हुआ है और यह अपने आकार, प्रकृति तथा गति में हुए अनेक परिवर्तनों का चश्मदीद रहा है। इस क्रमिक विकास की प्रक्रिया में, अर्थव्यवस्था की सदैव परिवर्तनीय जरूरतों के साथ देश की विदेश व्यापार नीति को एक आकार प्रदान करने में वाणिज्य विभाग ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वतंत्रता के तुरन्त बाद ओपन जनरल लाइसेन्स (ओजीएल) के अधीन वस्तुओं की सूची का विस्तार कर आयात नियंत्रण पर छूट देकर सरकार ने 'प्रगतिशील उदारवाद' की नीति का अनुसरण किया है। फिर 1956–57 के दौरान विदेशी मुद्रा संकट ने उदारवाद के इस चरण को तेजी से रोक दिया। व्यापक आयात नियंत्रण को पुनः लागू कर दिया गया और उन्हें 1966 तक बनाए रखा गया। 1966 में भारतीय रुपये के अवमूल्यन के बाद लगभग सभी उदारवादी पहलों को उलट दिया और आयात नियंत्रणों को सख्त कर दिया गया। यह व्यवस्था और अधिक मजबूती के साथ बाद में आने वाले वर्षों में भी और अधिक पुष्ट तथा मज़बूत हुई और अर्थव्यवस्था में आत्म निर्भरता को बढ़ाने तथा घरेलू उद्योगों की रक्षा के लिए जरूरत को पूरा करने के वास्ते यह व्यवस्था कम या ज्यादा इस रूप में 1970 के अन्त और 1980 के शुरू तक बनी रही।

पाबन्दी वाले चरण में आयात स्थानापन्न नीति का अनुसरण किया गया जिसने 1980 के दशक के मध्य में व्यापार सुधारों के नये चरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इसका उद्देश्य व्यापार प्रतिबंधों की कमी कर आर्थिक वृद्धि और प्रतिस्पर्धात्मकता को प्रोत्साहित करना था जिसमें सबसे पहले कलपुर्जों और बड़ी वस्तुओं को ओपन जनरल लाइसेंस सूची में शामिल कर सूची को धीरे–धीरे बढ़ाया गया। दूसरा प्रत्यक्ष आयात को ध्यानपूर्वक कम किया गया, निजी उद्यमियों के द्वारा मशीनरी तथा कच्चे माल के आयात के लिए और अधिक अवसर मुहैया कराए जाए। तीसरे, पुनःभरण लाइसेंस सहित अनेक निर्यात लाभों को लागू किया गया जिससे बाजार में मुक्त व्यापार किया जा सके और जो आयात तथा विदेशी मुद्रा के मार्ग में आने वाली रूकावटों को कम करने में सहायक हो।

भारत की विदेश व्यापार नीति में परिवर्तन की रफ्तार और प्रक्रियाओं ने 1990 में वास्तविक गति पकड़ी। पुनर्सुधारों में एक बार घुमाव दिया गया जिसमें ओपन जनरल लाइसेंस की सूची में वस्तुओं की संख्या में तेजी से कमी की गई। जुलाई 1991 में भारी सामान और कलपुर्जों के आयात के लिए लाइसेंस व्यवस्था को भी समाप्त कर दिया गया। एक दशक बाद एक अप्रैल 2001 को अन्य बची हुई वस्तुओं पर से भी लाइसेंस और मात्रात्मक पाबन्दियों को हटा दिया गया। वातावरण, स्वास्थ्य और सुरक्षा के मद्देनजर कुछ वस्तुओं जैसे उर्वरक, अनाज, खाद्य तेल तथा पेट्रोलियम पदार्थों को आयात बिना लाइसेंस और पाबन्दियों के सुगमता से किया जा रहा है। व्यापार शुल्क सुधारों पर भी व्यवस्थात्मक तरीके से ध्यान दिया गया और चुनिन्दा छूट देने की बजाए अधिकतम दरों में सीधे सपाट कमी कर दी गई। सीमा शुल्क की अधिकतम दरों में दृढ़ता के साथ कमी की गई ताकि इसे आसियान देशों के स्तर पर लाया जा सके।

विदेश व्यापार नीति, देश की व्यापार गति को आकार प्रदान करने का एक औज़ार है जिसे वाणिज्य मंत्रालय ने बनाया है। 2004–09 की मुक्त विदेश व्यापार नीति ने इस बात को साबित किया है कि व्यापार अपने आप में एक अन्त नहीं है बल्कि इसका तो प्राथमिक उद्देश्य रोजगार सृजन तथा बृहत आर्थिक कार्यकलापों को प्रोत्साहित करना है। हमने अपने सामने उद्देश्य रखा था कि 2008–09 तक विश्व व्यापार में भारत की हिस्सेदारी दोगुणा होनी चाहिए।

विदेश व्यापार नीति के अन्तर्गत तेजी से बढ़ने वाले कुछ ऐसे क्षेत्रों को चिन्हित किया गया है जिनमें आयात विस्तार और रोजगार पैदा करने की क्षमता है। कुछ क्षेत्र हैं– कृषि क्षेत्र, हस्तकरघा और हस्तशिल्प, कीमती पत्थर एवं आभूषण, चमड़ा एवं जूता। प्रत्येक वर्ष विदेश व्यापार नीति की वार्षिक अनुपूरकों के तहत इन क्षेत्रों के लिए लाभदायक विशेष नीति की घोषणा की गई है।

अतिरिक्त नीति सुविधाओं और पुनः प्रक्रियाओं को और आसान बनाने के वास्ते अप्रैल 2005 में 'वार्षिक अनुपूरकों' की घोषणा की गई। यह घोषणा राज्य सरकारों को यह शक्ति प्रदान करती है कि वे अंतर्राज्यीय व्यापार परिषद का

गठन कर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने के लिए सक्रिय भागीदारी निभाये। इसके अलावा अलग–अलग लाइसेंस की बजाये एक ही लाइसेंस नीति को अपनाया गया ताकि प्रक्रियात्मक सुविधाएं और सुगम निगरानी हो सके। इन अनुपूरकों ने "विशेष कृषि उपज योजना" का विस्तार कुक्कुट पालन तथा दुग्ध उत्पादों तक कर कृषि जनित आयात को नई गति प्रदान की है।

अप्रैल 2006 में वार्षिक अनुपूरकें रखी गई इसमें फोकस प्रोडक्ट और फोकस मार्किट नाम की दो योजनाओं की घोषणा की गई। उप–शहरी क्षेत्रों और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए "विशेष कृषि उपज योजना" में ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के उत्पादों को भी शामिल कर लिया गया और इस योजना का नाम बदलकर "विशेष कृषि एवं ग्राम उद्योग योजना" कर दिया गया। विश्व में भारत को कीमती पत्थर एवं आभूषण का मुख्य केन्द्र बनाने के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक उपायों को लागू किया गया।

इसी तरह अप्रैल 2007 में तीसरी वार्षिक अनुपूरकें घोषित की गई। इसका उद्देश्य बाहरी देशों को दी जा रही सेवाओं (निर्यात संबंधी) पर विशेष सेवा कर में छूट देने तथा भारत में निर्यातकों द्वारा उपयोग की जा रही सेवाओं पर सेवा कर में छूट देने या धन उपलब्ध कराने, और 'फोकस मार्किट स्कीम' (एफएमएस) तथा फोकस प्रोडक्ट स्कीम (एफपीएस) के तहत अवसरों, ऊपरी सीमाओं तथा पहुंच के विस्तार के लिए अनेक महत्वपूर्ण पहलें लागू की गई।

व्यापार में वृद्धिपूर्ण प्रदर्शन सरकार की व्यापार नीतियों का आईना होता है। आरंभिक चरण में जब प्रतिबंधात्मक व्यापार नीतियां लागू थी तब तक निर्यात में भारत की हिस्सेदारी में लगातार गिरावट आती रही है। 1948 में विश्व निर्यात में भारत की हिस्सेदारी 2.2 प्रतिशत थी जो 1980 में घटकर 0.42 प्रतिशत रह गई। बाद में जब आर्थिक सुधारों को लागू किया तो विश्व निर्यात में भारत की भागीदारी वर्ष 1993 में बढ़कर 0.6 प्रतिशत और वर्ष 2003 में और बढ़कर 0.8 प्रतिशत हो गई।

वर्ष 2004–09 के लिए विदेश व्यापार नीति में पहली बार वैश्विक व्यापार में भारत की हिस्सेदारी को दोगुना करने का ठोस लक्ष्य रखा गया और इसके लिए पांच वर्षों की अवधि निर्धारित की गई, परिणामस्वरूप वर्ष 2006 में विश्व व्यापार में भारत की हिस्सेदारी 1.2 प्रतिशत हो गई जबकि वर्ष 2004 में यह 0.9 प्रतिशत थी। अब विश्व व्यापार में भारत की हिस्सेदारी 2.1 प्रतिशत पार हो गई। इसी समय विश्व सेवा व्यापार में अब तक की सबसे अधिक वृद्धि हुई। जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 2006 में विश्व सेवा व्यापार में भारत की हिस्सेदारी 2.7 प्रतिशत हो गई जबकि वर्ष 2004 में यह हिस्सेदारी 2 प्रतिशत थी। सेवा व्यापार की वृद्धि के कारण ही विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी वर्ष 2004 में 1.1 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2006 में 1.5 प्रतिशत हो गई (यानि विदेश व्यापार नीति 2004–09 के शुरूआती वर्षों में) अगर मूल्यों के संदर्भ में देखे तो भारत का निर्यात तीन गुणा बढ़ गया। वर्ष 2000–01 में यह कुल 45 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर था जो वर्ष 2006–07 में बढ़कर 125 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर हो गया। विश्व व्यापार संगठन के विश्व व्यापार से संबंधित आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2007 में भारत का कुल माल व्यापार (आयात और निर्यात) 294 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर था और भारत का सेवा व्यापार निर्यात आयात सहित 143 बिलियन अमेरिकी डालर के बराबर था। अतः वर्ष 2006 में भारत के वैश्विक व्यापार में माल व्यापार और सेवा व्यापार में 72 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह 437 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर जा पहुंचा जबकि वर्ष 2004 में यह 253 बिलियन अमेरिकी डॉलर था। इसके अतिरिक्त एशिया, स्वतंत्र देशों के राष्ट्रकुल (सीआईएस) अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिकी देशों के साथ विशेष व्यापारिक समझौतों के द्वारा निर्यात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

व्यापार नीति के अलावा वाणिज्य मंत्रालय ने निर्यात को नई दिशा प्रदान करने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) लागू करने की पहल की है। सेज अधिनियम 2005 को संसद ने मई 2005 में पारित कर दिया था और जून 2006 में इसे राष्ट्रपति ने अपनी मंजूरी प्रदान कर दी। सेज नियमावली 2006 से साथ सेज अधिनियम 2005, 10 फरवरी 2006 से प्रभावी हो गया है। इससे प्रक्रियात्मक व्यवस्था का सामान्यीकरण होगा और केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों से संबंधित मामलों का एक ही स्थान पर निपटारा हो सकेगा।

सेज अधिनियम का अभिप्राय निवेशकों में धीरे–धीरे विश्वास पैदा करना और सरकार द्वारा सेज व्यवस्था स्थापित करने की सरकार की वचनबद्धता का संदेश देना था। सेज अधिनियम के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है:

- अतिरिक्त आर्थिक क्रिया कलापों का सृजन।
- सामान और सेवाओं के निर्यात को प्रोत्साहन देना।
- विदेशी और घरेलू स्रोतों से निवेश को बढ़ावा देना।
- रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
- बुनियादी सुविधाओं का विकास करना।

सेज योजना को लेकर देशी और विदेशी दोनों निवेशकों में जोरदार प्रतिक्रिया पैदा हुई। इस अधिनियम के तहत 362 सेज स्थापित करने को औपचारिक स्वीकृति प्रदान कर दी है। जिसमें से अब तक 133 सेजों को अधिसूचित कर दिया गया है।

क्षेत्रीय व्यापार समझौतों पर भारत का मत है कि ये बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था के अनुपूरक तथा उदारवादी व्यापार की मूलभूत इकाई है। अब मुक्त व्यापार समझौते (एफटीए) के अधीन विश्व व्यापार का लगभग 50 प्रतिशत व्यापार आपसी प्राथमिकता के आधार पर होता है। क्षेत्रीय व्यापार समझौते (आरटीए) के महत्व को ध्यान में रखते हुए भारत ने व्यापारिक भागीदारी और क्षेत्रीय खण्डों के साथ अपने संबंध स्थापित किए है ताकि विस्तृत आर्थिक सहयोग समझौते (सीईसीए) तक पहुंचने के लिए सैद्धांतिक समझौते को पूरा किया जा सके ताकि सीमा के तहत मुक्त व्यापार समझौते के अधीन सामान, सेवाएं, निवेश तथा आर्थिक सहयोग के क्षेत्रों की पहचान की जा सके।

भारत श्रीलंका मुक्त व्यापार समझौता, साफ्टा पर समझौता, भारत–सिंगापुर, प्रारंभिक हार्वेस्ट कार्यक्रम के साथ भारत–थाईलैण्ड, फ्रेमवर्क समझौता, भारत–अफगानिस्तान पीटीए समझौते मौजूदा दौर में प्रभाव में है। भारत मर्कोसुर पीटीए को जल्द ही लागू किया जाएगा। भारत–आसियन फ्रमवर्क समझौता, बिम्स्टेक, भारत–थाइलैण्ड मुक्त व्यापार समझौता, भारत–मॉरीशस सीका, भारत–यूरोपीय यूनियन व्यापार तथा निवेश समझौता, भारत–दक्षिण कोरिया व्यापार समझौता, भारत–जापान मुक्त व्यापार समझौता आदि अभी बातचीत के विभिन्न चरणों में है और भारत–चीन, भारत–ब्राजील–दक्षिण अफ्रीका (आईबीएसए), भारत–रूस, भारत–मलेशिया के बीच आपसी सहयोग के संभावित क्षेत्रों का पता लगाने के लिए संयुक्त अध्ययन दल का गठन किया गया है।

भारत का मानना है कि इस असमान विश्व में समानता और ईमानदारी लाने का एकमात्र तरीका नियम आधारित बहुपक्षीय व्यापारिक व्यवस्था है और विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) ही मुक्त, समानतापूर्व, अनुमानित और भेदभाव रहित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सुनिश्चित कर सकता है। इसलिए विश्व व्यापार संगठन की वार्ताऐं हमारी व्यापारिक कूटनीति में महत्वपूर्ण और निर्णायक स्थान रखती है। "विकास" मौजूदा दोहा दौर की वार्ता का मुक्त एजेण्डा है और वार्ताओं के सभी तत्वों में विकासशील देशों के लिए "विशेष और अलग व्यवहार" सबसे अधिक आवश्यक है जिससे कि उरुग्वे दौर में उत्पन्न असंतुलन को ठीक किया जा सके। कृषि के मुद्दे पर, विकसित देशों द्वारा अपने लोगों को दी जा रही निर्यात सब्सिडी समाप्त करने और असंतुलित व्यापार में सतत कमी विशेष उत्पादों के द्वारा ग्रामीण विकास, जीवन यापन तथा भोजन सुरक्षा के लिए विकासशील देशों के प्रति लचीलापन बरतनें और बढ़ते हुए निर्यात से बचने के लिए विशेष सुरक्षा उपाय तंत्र स्थापित करने के लिए भारत और उसके सहयोगी साझेदारी, जी–20 तथा जी–33 देशों ने व्यापार वार्ताओं के दौरान अपनी बढ़त बना ली है। गैर–कृषि बाजार प्रवेश (एनएएमए) में भी इसी तरह के महत्वपूर्ण मुद्दें है, जहां भारत और उसके सहयोगी साझेदार और नामा–11 विकसित देशों से अधिक से अधिक व्यापार शुल्क घटाने की प्रतिबद्धता की मांग कर रहे हैं। इसे छूट समझौते में पूरे में कम लेन–देन का सिद्धांत कहते हैं। सेवाओं के क्षेत्र में भारत विकसित देशों से मोड–1 (सीमा की आपूर्ति) और मोड–4 (प्राकृतिक मान की क्रिया) के बारे में ऊंची अभिलाषाएं रखता है।

मौजूदा दौर की वार्ता में भारत, जी–4 में इस सोच के साथ सबसे आगे है कि मौजूदा दौर के परिणाम में वास्तविक विकास के तत्व सुनिश्चित हो सके।

भारत सरकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की इस अभूतपूर्व क्षमता से वाकिफ है कि यह अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धात्मक मूल्यों पर सेवाएं और वस्तुएं मुहैया करा कर आम आदमी के जीवन स्तर को उठाता है। साथ ही साथ यह निर्यात वृद्धि के द्वारा रोजगार के नये क्षेत्रों को भी खोलता है।

(वाणिज्य सचिव, भारत सरकार) (पसूका)

कुरुक्षेत्र मंगवाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड-4, तल-7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	550 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	750 रुपये (वार्षिक)

किसानों की बदहाली तथा समाधान के उपाय

डॉ. वन्दना सिन्हा

हमारे देश में एक प्राचीन और प्रसिद्ध लोकोक्ति रही है–उत्तम खेती, मध्यम बान। अधम चाकरी, भीख निदान। अर्थात अर्थोपार्जन या व्यवसाय की दृष्टि से कृषि कार्य को उत्तम माना गया है। मध्यम श्रेणी का कार्य वाणिज्य या व्यापार को माना गया है। नौकरी को निकृष्ट या अधम कार्य माना गया है तथा उपरोक्त तीनों में से कुछ भी न होने पर अंततः जो कार्य बचता है वह भिक्षावृत्ति है।

उपरोक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि कृषि कार्य कितना महत्वपूर्ण तथा सम्मानजनक कार्य था। परन्तु आज की स्थिति में देश के विभिन्न भागों में किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। सन् 2003 से मार्च 2007 तक कुल 8263 किसानों द्वारा 7 राज्यों में आत्महत्या की गयी है। अकेले महाराष्ट्र में आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या सन् 2006 में 2329 रही। अनाज उगाकर शहरी लोगों की भी खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले किसान आज स्वयं भुखमरी के शिकार हो रहे हैं। किसान जो तपती दोपहरी की परवाह किये बिना भी अपने खेतों में श्रम करता है, कड़कड़ाती सर्दी हो या मूसलाधार बारिश अपने खेतों में सिंचाई, निराई करने और नालियां बनाने में जुटा रहता है, जिसके लिए कृषि मात्र आजीविका का साधन ही नहीं बल्कि जीवन की धुरी है उसे कई बार फसल से अपनी लागत भी निकल जाने की उम्मीद नहीं रहती है।

वर्तमान में हमारे देश की कुल आबादी का लगभग 60 प्रतिशत गांवों में रहता है। इन 60 प्रतिशत में अधिकांश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कृषि या कृषि से जुड़े कार्यों को करते हैं वही उनकी आजीविका का साधन है। किन्तु खेती तथा किसानों दोनों की ही स्थिति बदहाल है। छोटी जोतों, भूमि का विवादित स्वामित्व, फसल हेतु वर्षा पर निर्भरता, आधारभूत ढांचे की कमी, संसाधनों से निम्न उत्पादकता तथा फसल का उचित मूल्य न मिल पाना आदि कारक कृषि की निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी हैं, देश में छोटी जोतों की संख्या अधिक है। एक हेक्टेयर से कम क्षेत्रफल की कुल जोतों की संख्या आधे से भी अधिक है। निश्चित तौर पर इन पर खेती करने वाले किसान गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। जोत का क्षेत्रफल कम रहने से उत्पादकता भी कम होती है। सिंचाई में भी वर्तमान में देश की कुल कृषि भूमि का करीब 40 प्रतिशत क्षेत्र ही कृत्रिम सिंचाई की पहुंच में है बाकी 60 प्रतिशत हर वर्ष वर्षा पर ही आधारित रहता है। प्रमाणित बीजों की अनुपलब्धता से भी खेती में उत्पादन काफी कम हो जाता है।

चीन में प्रति हेक्टेयर 4.25 टन गेहूं, फ्रांस में 7.85 टन, इंग्लैण्ड में 7.77 टन गेहूं होता है जबकि भारत में 2.17 टन प्रति हेक्टेयर गेहूं का उत्पादन है। इसी प्रकार धान में भी इजिप्ट में प्रति हेक्टेयर 9.8 टन धान, अमरीका में 7.83 टन, कोरिया में 6.73 टन और जापान में 6.42 टन धान प्रति हेक्टेयर होता है जबकि भारत में केवल 2.9 टन प्रति हेक्टयर धान होता है।

इसी प्रकार कपास, तिलहन और मक्का की उत्पादकता भी भारत में बहुत कम है। इसका कारण है अच्छे बीज व खाद का अभाव, सिंचाई हेतु वर्षा जल पर निर्भरता तथा खेती सुधार की तकनीकों का किसानों को ज्ञान न हो पाना। असमय वर्षा, ओलावृष्टि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा मौसम के अचानक व अत्यधिक परिवर्तन आदि कारण उपज को प्रभावित करते हैं।

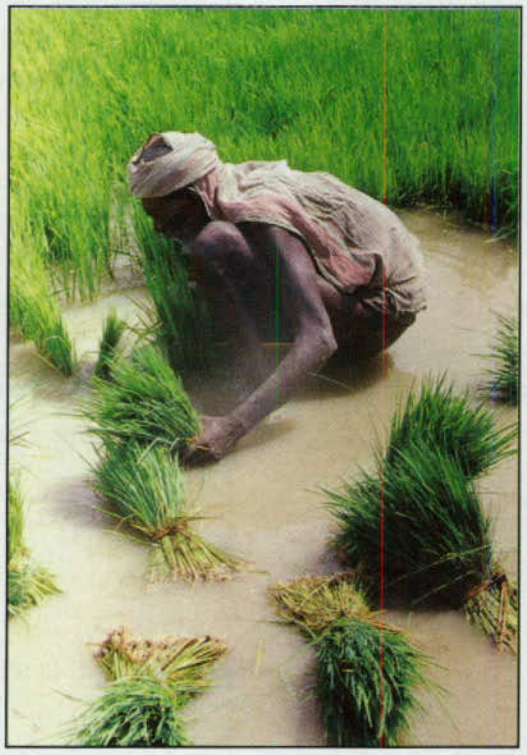

गरीबी से परेशान – खुश नहीं हैं किसान

कम उत्पादन के अतिरिक्त अन्य कारण भी किसानों की निम्न आर्थिक स्थिति के लिये उत्तरदायी हैं जैसे–किसानों को उत्पादित अनाज का उचित मूल्य न मिल पाना तथा उत्पादन के लिये आवश्यक–खाद, बीज, कीटनाशक आदि के भाव बढ़ जाना। प्रसंस्कारित खाद्य तथा उत्पादित खाद्यान्न के बीच मूल्य का अंतर काफी है। इस बढ़ी मूल्य वृद्धि का लाभ उद्योगपति ले जाते हैं।

यह नीति भी स्पष्ट होनी चाहिये कि देश को पर्यावरण की कीमत पर औद्योगिक देश बनाना है या पर्यावरण की रक्षा करते हुए उद्योगों के विकास की नीति बनानी है। उद्योग हेतु कृषि भूमि का अधिग्रहण कभी भी उचित नहीं है। देश में काफी भू–भाग पठारी व बंजर है जहां औद्योगिक विकास की संभावना हो सकती है ऐसी भूमि का उपयोग उद्योग के लिए करना चाहिए, साथ ही पर्यावरण के मानकों का पालन करने वाले उद्योगों को ही अनुमति प्रदान की जानी चाहिये। कृषि और उद्योग दोनों का संतुलित विकास हो सके ऐसी नीति बनायी जानी चाहिए।

खेती में बढ़ती लागत – किसान की खस्ता हालत

किसानों की बदहाली एवं आत्महत्या का एक बड़ा कारण उनकी ऋणग्रस्तता भी रही है। किसानों को बैंकों से उचित ब्याज पर ऋण नहीं मिल पाता क्योंकि अधिकतर किसान छोटे जोतों के स्वामी होते हैं। बैंक भी इन्हें ऋण देने में झिझकते हैं। ऐसी स्थिति में स्थानीय साहूकारों से अधिक ब्याज पर ऋण लेना पड़ता है। आज किसान दोहरी मार झेल रहा है, आधुनिक खेती के नाम पर उसकी निर्भरता बाजार पर धीरे–धीरे बढ़ती हुई उस पर पूरी तरह आश्रित हो चुकी है। बहुसंख्यक किसान जिनकी जोत 1 हेक्टेयर से कम है जुताई के लिए दूसरों के ट्रैक्टर पर, बीज व खाद के लिए विक्रेताओं पर, सिंचाई के लिए दूसरों के पंपिंग सेट पर तथा थ्रेसिंग के लिए दूसरों के थ्रेसर पर निर्भर हैं। बिजली की अनिश्चितता कोढ़ में खाज की तरह है। परम्परागत खेती में निर्भरता कम थी। जुताई अपने बैलों से हो जाती थी, खाद गाय, बैल के गोबर से तैयार हो जाता था। फसल का ही 1 भाग बीज के रूप में सुरक्षित रहता था तथा परंपरागत बीज कम सिंचाई मांगते थे अथवा वर्षा आधारित थे। खेती करने की विभिन्न प्रक्रियाओं में निर्भरता के बाद जब फसल तैयार भी होती है तो किसान अपने द्वारा तय मूल्य पर उसे बेच नहीं पाता क्योंकि मूल्य सरकार या बाजार द्वारा तय होता है। इस मूल्य को तय करते वक्त किसान के पूरे परिवार द्वारा किया गया श्रम (3 से 4 माह का) किसी को याद नहीं रहता है। तभी तो जिस रफ्तार से महंगाई बढ़ रही है, वेतनभोगियों के वेतन बढ़ रहे हैं उस रफ्तार से फसल की कीमत नहीं बढ़ रही है। लागत बढ़ती जा रही है पर शुद्ध लाभ, यदि श्रम को भी ले लिया जाये, धीरे–धीरे ऋणात्मक होता जा रहा है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसान यदि फसल नहीं बेचेगा तो वह भूखों नहीं मरेगा पर शहरी जनसंख्या, जिनके पास ऐशोआराम के तमाम साधन केन्द्रित हैं, जरूर भूखों मर जाएंगे। आखिर खाना तो उन्हें भी अनाज ही है। अतः समय आ गया है जब हम किसानों की दयनीय दशा के बारे में सोचे व उपाय तलाशे।

कृषि भी लाभकारी व्यवसाय या रोजगार की श्रेणी में आ जाये। किसान भुखमरी के शिकार न हों, तंगहाली से त्रस्त होकर आत्महत्या जैसा गम्भीर कदम उठाने पर विवश न हों। इसके लिये कुछ ठोस उपाय किये जा सकते हैं–

- किसानों की उपज का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाया जाये। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय किसान आयोग की 2004 से 2006 के मध्य प्रस्तुत रिपोर्टों में एक महत्वपूर्ण सिफारिश में कहा गया है कि किसानों की उपज का न्यूनतम समर्थन मूल्य लागत खर्च से 50 प्रतिशत अधिक होना चाहिए। जबकि अभी न्यूनतम समर्थन मूल्य लागत खर्च के बराबर ही रहता है।
- किसानों को बैंकों से सीधे सस्ते दर पर तथा सुगमता से ऋण उपलब्ध कराया जाना चाहिये। ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) 4–5 प्रतिशत ब्याज दर पर बैंकों को पैसा उपलब्ध कराता है। यह पैसा राज्य जिला और प्राइमरी बैंकों से किसानों तक पहुंचने तक ब्याज 9 से 10 प्रतिशत हो जाता है। वर्तमान में किसानों को इसी दर से ब्याज देना पड़ता है। अतः सीधे नाबार्ड से या ग्रामीण बैंकों से किसानों को 4 प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जा सकता है।
- सिंचाई की कमी को दूर करने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर नदियों को जोड़ने का कार्य किया जाना चाहिये। नहरों का विकास हो तथा पर्यावरण को भी अधिक क्षति पहुंचाये बिना छोटे–छोटे बांधों के निर्माण को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। वर्तमान में देश की कुल कृषि भूमि का 40 प्रतिशत ही कृत्रिम सिंचाई की पहुंच में है।
- सिंचाई हेतु चूंकि बिजली पर आश्रित होना पड़ता है अतः सभी ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत आपूर्ति सुनिश्चित की जानी चाहिये, साथ ही विद्युत आपूर्ति के घंटे बढ़ाये जायें। बरसात के जल को रोकने व

संरक्षित करने का भी समुचित प्रशिक्षण कृषकों को दिया जाना चाहिये।

- खाद, बीज और कीटनाशक पर आने वाला खर्च का लगभग 50 प्रतिशत होता है। ऐसे में यदि जैविक खेती की जाय तो यह खर्च काफी कम हो जायेगा और किसानों की आय बढ़ेगी। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा भी यह स्वीकार किया गया है कि जैविक खेती से प्राप्त उत्पादकता की मात्रा में रासायनिक खाद से प्राप्त उपज की अपेक्षा अधिक अंतर नहीं होता वरन् गुणवत्ता की दृष्टि से जैविक कृषि के उत्पाद अधिक अच्छे हैं। यूरोपीय संघ के देशों में 1990 से ही जैविक कृषि को प्रोत्साहन मिल रहा है।
- वर्तमान में देश में साढ़े तीन करोड़ किसान ज्वार, बाजरा और मक्के का उत्पादन करते हैं। इस उपज के लिये मांग कम हो रही है, उचित कीमत भी नहीं मिल पाती है और इसकी खरीद–बिक्री का प्रबंध न होने से इन किसानों की आय तथा उत्पादन दोनों घट रहा है। जबकि पौष्टिकता की दृष्टि से ज्वार, बाजरा और मक्का उपयुक्त अनाज है। अतः इन खाद्यान्नों की मांग बढ़ाकर इसे संशोधित एवं प्रसंस्कारित करा कर देश–विदेश में इसकी बिक्री को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।
- मिश्रित खेती तथा अधिक आय देने वाले उपज (कैश–क्रॉप) के उत्पादन की जानकारी तथा जरूरी प्रशिक्षण किसानों को दिया जाना चाहिये। अनाज उत्पादन के अतिरिक्त कृषक अपनी भूमि के कुछ भाग का प्रयोग जेट्रोफ, बांस, आंवला, औषधीय पौधों आदि को लगाने में कर सकते हैं। इसके प्रशिक्षण का कार्य देश के कृषि संस्थानों तथा कृषि विश्वविद्यालयों को प्राथमिकता से साथ करना चाहिये। इस विषय में और अनुसंधान की भी आवश्यकता है। नवीन बजट में भी कृषि अनुसंधान पर बल देने के लिये दो कृषि विश्वविद्यालयों को 50–50 करोड़ रुपये प्रदान किये गये हैं।
- कृषि कार्य को मुनाफे के कार्य में बदलने के लिये यह आवश्यक है कि जहां खाद्यान्नों का उत्पादन हो वही पर संशोधन एवं प्रसंस्कारित अनाजों की बिक्री का सीधा मुनाफा किसानों को मिलेगा तब कृषि कार्य भी स्वतः ही एक मुनाफे के उद्योग के रूप में पहचाना जाने लगेगा। इसके लिये हमें खाद्यान्न संशोधन व प्रसंस्करण की बड़ी इकाइयों जैसे– दाल मिलों, चावल मिलों के स्थान पर ग्रामीण स्तर पर ही कृषकों की सहकारी समिति बनाकर छोटी–छोटी इकाइयां स्थापित करनी होगी जहां धान व दलहनों का प्रसंस्करण हो सके। इसी प्रकार गेहूं उत्पादन के क्षेत्रों में गांवों में ही छोटे पैमाने पर गेहूं से आटा बनाने व पैकिंग एवं स्थानीय बाजार में वितरण को प्राथमिकता दी जाये। इससे बड़ी आटा उत्पादन कम्पनियां जो मुनाफा ले जाती हैं, वह मुनाफा ग्रामीणों तथा कृषकों को मिल सकेगा तथा थोक में उत्पादन एक ही जगह केन्द्रित होने के बजाय बहुत सारे लोगों द्वारा उत्पादन का रास्ता खुलेगा। इसके कारण ग्रामीण बेरोजगारी में कमी आयेगी साथ ही कृषि जो कि मौसम से जुड़ा कार्य है जिसमें मौसमी बेरोजगारी की समस्या आती है उसका भी समाधान हो जायेगा, क्योंकि फसल की कटाई के बाद अगली बोवाई के मध्य का खाली समय कृषक प्रसंस्करण इकाइयों के कार्यों में दे सकेंगे। इसी प्रकार की इकाइयां, सब्जी, फल, तिलहन आदि उत्पाद के लिये स्थापित की जा सकती है। परन्तु इसके लिये सरकार द्वारा प्रोत्साहन व विशेष छूट दिया जाना चाहिये। हमारे देश में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में चले सहकारी प्रयास, 'अमूल' ने सिद्ध कर दिया है कि यदि ईमानदार प्रयास किया जाये तो ग्रामीण स्तर पर सहकारिता के माध्यम से उत्पादन, वितरण का कार्य मुनाफे के साथ हो सकता है।
- किसानों द्वारा उत्पादित तथा संशोधित एवं प्रसंस्कारित पदार्थों को उचित बाजार मिल सके इसके लिये व्यवस्था होना बहुत आवश्यक है। इस हेतु, जिस प्रकार औद्योगिक सहकारी समितियों द्वारा बनाए सामान का विक्रय तथा निर्यात हेतु "राष्ट्रीय फेडरेशन" की स्थापना की गयी है, उसी प्रकार कृषकों की समितियां, जो इकाइयों का संचालन करेंगी उन्हें भी औद्योगिक सहकारी समिति में सम्मिलित करते हुए राष्ट्रीय फेडरेशन के माध्यम से उनके उत्पादों का विक्रय व निर्यात हो। इसके अतिरिक्त "दिल्ली हाट" जैसे बाजारों की स्थापना सभी महानगरों में की जानी चाहिये, जहां जैविक कृषि के उत्पाद सहित किसानों की समितियों के उत्पाद भी उचित मुनाफे के साथ किसान बेच सकें।
- पिछले कुछ वर्षों से कपास और गन्ना का उत्पादन मांग की तुलना में अधिक होने के कारण भाव गिर जाता है तथा किसानों की आय कम हो पा रही है। इसके लिये कपास उत्पादक किसानों और कपड़ा मिलों में सीधा सम्पर्क होना चाहिये। मांग और उत्पादक का संतुलन बनना चाहिये। गन्ना उत्पादक किसानों को कई बार गन्ना बेचने पर पैसा नहीं मिलता क्योंकि चीनी मिल को घाटा हुआ है ऐसा बताया जाता है। जबकि गन्ने से चीनी के अतिरिक्त बिजली, शराब और कागज बनता है। लेकिन किसानों को सिर्फ चीनी के मुनाफे से कीमत दी जाती है। अतः अन्य मुनाफों का भी आंकलन करके किसानों को उस अनुपात में गन्ने की कीमत मिलनी चाहिये।

यदि उपरोक्त उपायों पर गौर करके योजना बनायी जाये और सरकार द्वारा कृषकों हेतु नीति बनायी जाये तो निश्चित ही कृषि भी लाभकारी व्यवसाय बन सकेगा व एक बार पुनः उसी समाज की स्थापना हो सकेगी जहां कृषि कार्य को सर्वश्रेष्ठ कार्य के रूप में मान्यता प्राप्त थी। परन्तु इसके लिये दृढ़ राजनैतिक शक्ति की आवश्यकता है। क्षुद्र तथा मुनाफाखोर पूंजीपतियों से प्रभावित राजनीति से इसमें कुछ भी बेहतरी की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

(लेखिका काशी विद्यापीठ में समाज कार्य विभाग में रीडर हैं।)

नीम का कृषि, पर्यावरण एवं हमारे जीवन में महत्व

डॉ. राकेश कुमार प्रजापति व डॉ. भवानी शंकर गुप्ता

नीम का वानस्पतिक नाम अजार्डिचटा इन्डीका (AZADIRACHTA INDICA), अंग्रेजी में मारमोसा तथा अन्य भारतीय नाम नीम, निम, इन्डियन लिलेक, निम्मी, लिम्बो तथा लिमडा इत्यादि से जाना जाता है। नीम मूलतः भारतीय पेड़ है और यह भारत के अधिकांशतः अर्द्धशुष्क क्षेत्र में बहुत पाया जाता है। भारतीय आयुर्वेद में नीम के महत्व का विशेष उल्लेख मिलता है। नीम के प्रत्येक भाग का स्वास्थ्य के लिए महत्व का विवरण भारत के प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। भारतवासी 5000 वर्ष पहले से ही नीम के उपयोग एवं महत्व को जानते थे। प्राचीन ग्रन्थों में जैसे–पुराणों, अथर्ववेद, उपनिषद, अमरकोश और ज्ञान सूत्र आदि में नीम के गुण, दवा और प्रकृति, कीट एवं रोग नियंत्रण के रूप में उल्लेख मिलता है। वास्तव में भारत के लोग नीम को गांव की दवाखाना और पवित्र वृक्ष कहते थे।

जलवायु

नीम के लिये गर्म जलुवायु सबसे अच्छी रहती है, वैसे तो यह 49^0 सेन्टीग्रेट से 0^0 सेन्टीग्रेट तापमान पर उगाया जा सकता है। आज नीम का विस्तार दुनिया के लगभग 30 देशों में हो गया है। इसकी उपयोगिता को देखते हुये अब एशिया, अफ्रीका, मध्य दक्षिणी–अमेरिका तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में भी इसको उगाया जा रहा है। नीम वैसे तो हर प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है, मगर इसके लिये गहरी काली मृदा तथा 8.5 पी.एच. मान तक की भूमि सबसे उपयुक्त रहती है। नीम को कम पानी तथा अधिक धूप की जरुरत होती है। इसको 450 से 1200 मिमी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह से उगाया जा सकता है, परन्तु 200–250 मिमी. वर्षा या उचित जल निकास न होने पर यह सूख जाता है। 3–5 वर्ष की अवस्था में यह फल देने लगता है। परिपक्व पौधे में 30–35 किलों फल (निम्बोली) होता है।

रासायनिक संगठन

नीम में पाये जाने वाले रासायनिक तत्व जैसे :– निमबिन, निमबिडीन, निनबिडोल, गेडुनिन सोडियम निमबिनेट, क्यूरसिटिन,

निम्बोली से लदा नीम – घर का हकीम

सालानिन, एजार्डियडीन आदि प्रमुख हैं। सबसे ज्यादा सक्रिय तत्व मुख्य रूप से बीज और तेल में पाये जाते हैं। यद्यपि पत्ती और छाल में सक्रिय तत्व कम मात्रा में पाये जाते हैं। नीम की 100 किलोग्राम निम्बोली से नाइट्रोजन (3. 56), फासफोरस (0.83), पोटाश (1.67), कैल्शियम (0.77), तथा मैग्नेशियम (0. 75), किलोग्राम तक प्राप्त होता है। नीम में कई हजार जैविक रसायनों से युक्त 100 टरपेनोयड पाये जाते हैं। जिसमें लिमिनोयड प्रमुख है।

नीम की शीतल छाया – निरोग रखे काया

नीम का उपयोग

पर्यावरण के प्रति जागरूक कुछ कृषि वैज्ञानिकों को अब इस बात का अहसास होने लगा है कि रासायनिक कीटनाशक जरूरी नहीं है। अफसोस इस बात का है कि उन्हें यह अहसास बहुत देर से तब हुआ है, जबकि भूमि विषैली हो चुकी है, भूजल प्रदूषित हो चुका है, पर्यावरण दूषित हो चुका है, लाखों लोगों का स्वास्थ्य खतरे में डाल दिया गया है और हज़ारों खेतों व कृषि–मजदूरों के प्राण हर लिए गए हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि प्रतिवर्ष कोई 20,000 लोग विषैले कीटनाशकों के कारण मारे जाते हैं। इस हिसाब से देखा जाये तो गत 30 वर्षों में कीटनाशकों ने विश्वभर में 6 लाख से अधिक लोगों की जान ली है। आई.आर.आर.आई. के पूर्व महानिदेशक डॉ. रॉबर्ट कैट्रेल के अनुसार, "यह सब दर्शाता है कि हरित क्रांति, जिसमें रसायनों के प्रयोग पर बहुत अधिक जोर दिया गया था, की गलतियों को पहचान कर उन्हें दूर कर दिया गया है।" उनका मानना है कि कीटनाशकों के विषैलेपन को देखते हुए इनका प्रयोग अंतिम उपाय के तौर पर ही किया जाना चाहिए। रासायनिकों के प्रयोग ने समस्याओं को खत्म करने की जगह कहीं ज्यादा उलझा दिया है। पर्यावरण प्रदूषित करने के अलावा कीटनाशकों ने कीटों की कई छोटी प्रजातियों में परिवर्तन लाकर उन्हें बड़ी व अधिक खतरनाक बना दिया है।

कृषि के क्षेत्र में

- जैविक कृषि क्षेत्र में नीम का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। घरेलू, कृषि रसायन और पोषक तत्व के रूप में नीम का प्रयोग उपयोगी इसलिये है, चूंकि इसमें हानिरहित और जैविक रूप से अपघटित होने वाले तत्व मौजूद हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है, कि नीम का सत् 400 जातियों के हानिकारक कीटों के लिये प्रभावी है। संश्लेषित रसायनों के प्रयोग से फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों में कृत्रिम रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है। इस दिशा में नीम को बहुत प्रभावी जैविक रसायन में रूप में उपयोग किया जा रहा है।
- नीम के सत् बनाने के लिये 3 महीने से ज्यादा पुराने बीज को नहीं लेना चाहिये। बीज को तोड़कर 50 ग्राम निम्बोली निकाल लेना चाहिये तथा इसके बाद इसको अच्छी तरह से कूट कर कपड़े में पोटली बांधकर एक लीटर पानी में डुबा देना चाहिये। रात भर रहने के बाद इसको अच्छी तरह निचोड़ लेना चाहिये, इसके बाद इस पानी को 5 लीटर पानी में मिलाकर उसमें सस्ता साबुन थोड़ी मात्रा में मिलाकर रोग एवं कीटों पर छिड़काव कर सकते हैं।
- नीम की पत्ती से सत् बनाने के लिये 5 लीटर पानी में एक किलो नीम की पत्ती डालकर पूरी रात छोड़ दे फिर सुबह पत्ती को पीसकर पानी में मिलाकर छान लें। इसमें 80 किलो पत्तियां एक हेक्टेयर खेत के लिये चाहिये।
- नीम खली से सत् बनाने के लिये 100 ग्राम खली एक लीटर पानी के लिये चाहिये। बाकी विधि उपरोक्त जैसी ही है।
- नीम का 30 मिली तेल एक लीटर पानी के लिये चाहिए। इसको अच्छी तरह से मिला लेना चाहिये।
- एक एकड़ भूमि के लिये 60 लीटर घोल की जरूरत होती है। छिड़काव जल्दी सुबह या शाम में करें, तथा 10 दिन के अन्तर पर दूसरा छिड़काव करें। छिड़काव के घोल में थोड़ी मात्रा में सस्ता साबुन अवश्य मिला लेना चाहिये, जिससे छिड़काव में आसानी होती है। भण्डारण में भी नीम की पत्तियों का उपयोग कीटों को रोकने में कारगर सिद्ध हुआ है। नीम का प्रयोग यूरिया की कोटिंग (आवरण) के रूप में धान की फसल में सफलतापूर्वक किया गया है। जिससे यह नाइट्रोजन को अस्थिर

करने वाले जीवाणुओं को निष्क्रिय बनाता है। नीम का प्रभाव कीटों के हारमोन तन्त्र को प्रभावित करता है। जबकि कृत्रिम रसायन कीटों के पाचन तंत्र और तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। इसलिये नीम के प्रयोग से कीटों की अगली पीढ़ी में प्रतिरोधक क्षमता नहीं पैदा हो पाती है।

नीम का कीटों पर प्रभाव

- अण्डों, लार्वा तथा प्यूपा के रहने वाले स्थानों का विनाश।
- लार्वों और निम्फ में निर्मोचन को रोकना।
- मादा कीटों की प्रजनन क्षमता को रोकना।
- नर कीटों का बधिया करण।
- कीटों के रूपान्तरण को रोकना।
- कीटों के ऊपर कठोर परत को बनने से रोकना।

पर्यावरण के क्षेत्र में

आज दुनिया में बढ़ रहे पर्यावरण प्रदूषण के चलते नीम का महत्व पर्यावरण सन्तुलन में अधिक हो जाता है। इन सारे विषयों को लेकर विश्व में नीम पर कई सेमिनार और महत्वपूर्ण कार्यशालाएं हो रही हैं। नीम से बने कीट रसायनों का महत्वपूर्ण उपयोग है जिसका दुष्प्रभाव मनुष्य, भूमि और पानी पर नहीं होता है। आज विश्व कृत्रिम रसायनों पर निर्भर है, जिसके कारण तरह–तरह की बीमारियों का जन्म हो रहा है। जैविक खेती में नीम का महत्वपूर्ण उपयोग है। नीम का पौधा वातावरण की आक्सीजन को भी शुद्ध करता है। इसके अन्य लाभ भी है। जैसे–बाढ़ नियत्रंण, भू–क्षरण को रोकना, कृषि वानिकी, भूमि उर्वरता, वायु रोधक तथा बहुत से पक्षियों के लिये घरौंधे का काम करता है।

नीम को भारतीय साहित्य में कल्पवृक्ष से भी ऊंचा स्थान मिला है। 50,000 नीम के पेड़ अराफात में लगाये गये थे, ताकि हज यात्रियों को छाया मिल सके। मुस्लिम साहित्य में इसको "सजर–ए–मुबारक" कहा गया है। नीम का एक पौधा अपने जीवन में 24000 से 36000 अमेरीकी डालर के मूल्य की वायु शुद्ध करता है। इसके अलावा यह लकड़ी भी उपलब्ध कराता है। नीम का उपयोग सामाजिक वानिकी में भी हो रहा है। नीम की लकड़ी बहुत ही मजबूत होती है और इसमें दीमक भी नहीं लगती।

बहुउपयोगी नीम की छाल

चिकित्सा के क्षेत्र में

प्राचीन काल से ही नीम का उपयोग भारतीय आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा पद्धति में अच्छी तरह से ज्ञात था। नीम के फल, बीज, तेल, पत्ती, छाल तथा जड़ का उपयोग विभिन्न प्रकार की दवाओं के रूप में किया जाता रहा है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही "देवी शीतला माता" के रूप में नीम की पूजा की जाती है, इसके प्रतिजैविक गुणों के कारण बच्चों के जन्म के समय प्रसव वाले कमरे में जलाया जाता था, चूंकि नीम के जलने से जो धुआं निकलता था वह मच्छरों के लिये धातक होता था। दाद–खाज और खुजली में भी इसकी बड़ी उपयोगिता प्राचीन काल से ही ज्ञात है। चेचक जैसे घातक रोगों में भी इसकी पत्तियों को सीधा ही त्वचा पर इस्तेमाल किया जा सकता है, सिर के जुएं, लीख आदि के लिये नीम का तेल इस्तेमाल किया जाता रहा है। भारतीय आयुर्वेद में नीम की दातून दातों के रोग एवं मलेरिया जैसे रोग के लिये प्रयोग किया जाता रहा है। नीम खून की सफाई, बुखार आदि में भी मनुष्य के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में नीम के विभिन्न भागों का उपयोग

- **छाल** – कफ, बुखार, भूख की कमी, आंतों के कीड़े, घाव, उलटी, त्वचा रोग, अधिक प्यास लगना, मधुमेह।
- **पत्ती** – कुष्ठ, त्वचा रोग।
- **फूल** – आंत के कीड़े, फलेगम, बाइल स्प्रेशन।
- **फल** – मधुमेह, आंखों की समस्या, बवासीर, आंतों में कीड़े, मूत्र रोग, घाव, कुष्ठ इत्यादि।
- **कोयल** – अस्थमा, कफ, तिल्ली, आंत रोग एवं कीड़े, कुष्ठ रोग इत्यादि।
- **गोंद** – घाव, फोड़े–फुन्सी, त्वचा रोग।
- **बीज** – कुष्ठ एवं आंतों के कीड़े।
- **तेल** – आंतों के कीड़े, त्वचा रोग, कुष्ठ रोग।

मलेरिया से भारत में प्रतिवर्ष 2 लाख मौतें होती हैं, जबकि नीम में पाया जाने वाला गेडुनिन उतना ही प्रभावशाली है जितना क्युनिन। चीन ने तो नीम का उपयोग मलेरिया जैसी बीमारी के लिए शुरू कर दिया है। भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान की प्रयोगशाला में चल रहे अनुसंधानों से नीम द्वारा मधुमेह, हृदय रोग और एड्स जैसी भयंकर बीमारियों को रोकने के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुये है। जोड़ों के दर्द, पेट की सूजन आदि में नीम का अर्क एवं तेल कारगर सिद्ध हुआ है। नीम का उपयोग परिवार नियोजन में भी हो रहा है। पत्तियों से बनी सेनसल नामक दवा का प्रयोग भारतीय सेना के जवानों पर गर्भ निरोधक (पुरुष) के रूप में किया है जिसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुये है। पुरुषों के लिये उपयोग किये जाने वाली दवा में सेनसल पहली पुरुष गर्भ निरोधक गोली होगी। मेडागास्कर की महिलायें एक मुट्ठी पत्तियां खाकर गर्भ निरोध कर लेती हैं। दक्षिण–पूर्व एशिया में नीम की छाल का उपयोग त्वचा कैन्सर के लिये हो रहा है। 15 मिली पत्तियों के रस से या 10 पत्तियां रोज खाने से रोगी की इन्सुलिन की मात्रा 30–50 प्रतिशत तक कम हो जाती है। भारत सरकार ने नीम कैप्सूल, टेबलेट और नीम तेल आदि मेडिकल स्टोरों पर रखना अनिवार्य कर दिया है। नीम की पत्तियों के रस से कोलेस्ट्राल की मात्रा 30 प्रतिशत तक दो घण्टे में कम हो जाती है।

व्यापार के क्षेत्र में

नीम की छाल से डाई, मन्जन, आदि बनाये जाते हैं। बीज का उपयोग मिथेन गैस बनाने में किया जाता है। पत्तियों का उपयोग जानवरों के लिये खाद्य सामग्री आदि बनाने में किया जाता है।

- **कास्मेटिक उद्योग** – फेसियल क्रीम, लोशन, फेश पाऊडर, एन्टीसेप्टीक क्रीम।
- **पेपर उद्योग** – कागज को मजबूत करने के लिये।
- **दवा उद्योग** – एन्टीसेप्टीक, गोली आदि।
- **टेक्सटाइल उद्योग** – डाई और धागे।
- **सफाई उद्योग** – साबुन, मंजन, पाऊडर।
- **खाद्य उद्योग** – जैल आदि बनाने में।
- **कृषि उद्योग** – खाद, दवा आदि में।

एक अनुमान के अनुसार लगभग 2 करोड़ नीम के पेड़ भारत में है। नीम का व्यापार 10 करोड़ रुपये से भी ज्यादा का भारत में होता है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या जो 1 अरब 20 करोड़ से भी अधिक पहुंच रही है। अगर 10 व्यक्तियों के द्वारा नीम का एक पेड़ लगाया जाए तो कम से कम 10 करोड़ पेड़ों का रोपण हो सकता है।

नीम के घरेलू उपयोग

- नीम के तेल तथा वैसलीन का 1:5 के अनुपात में मिलाकर लेप बनाले। इसका प्रयोग मच्छर, त्वचा रोग, छोटे–छोटे घाव, कटे तथा जले की जगह लगा सकते हैं।
- त्वचा को स्वस्थ रखने के लिये नीम की पत्तियों की बनी चाय और पानी में उबाल कर स्नान करें।
- खुजली, कनजुवाइटिस में नीम की पत्तियों को रूई के साथ उबाल कर ठंडे होने पर आंख या खुजली की जगह रूई से साफ करें।
- धावकों को नीम के उबले हुये पानी से पैर धुलाने चाहिये तथा नीम की चाय पीनी चाहिये।
- नीम तथा नारियल का तेल सिर पर लगाने से बालों की रूसी खत्म हो जाती हैं।
- गले में खरास होने पर नीम की पत्तियों को उबाल कर उसमें थोड़ा शहद मिलाकर गरारा करने से लाभ मिलता है।
- मुहासों की सफाई नीम की पत्तियां उबालकर करे।
- 30 मिली नीम के तेल को एक लीटर पानी में अच्छी तरह मिलाकर 1 मिली साबुन घोलकर पौधों के रोगों पर छिड़काव के लिये इस्तेमाल कर सकते हैं।
- मधुमेह और पेट की अम्लता के लिये 2–3 पत्तियां रोज खाये।
- सूखी नीम की पत्तियां अन्न भण्डारण के लिये उपयोग कर सकते है।

नीम के प्रसार के लिए प्रयास

नीम फाउन्डेशन (1993) की स्थापना के साथ ही नीम के रोपण के लिये 1997 में इस फाउन्डेशन को पर्यावरण और वन मंत्रालय के संयुक्त प्रयास से सारे देश में ग्रीन इन्डिया विथ नीम आन्दोलन 1998 में चलाया गया। नीम के महत्व को देखते हुए इसके प्रचार–प्रसार के लिए व्यक्तिगत, ग्रामीण सामुदाय, पंचायत, राज्य सरकार, भारत सरकार, गैर सरकारी सामाजिक संस्थान, अर्द्ध सरकारी संस्थान, स्कूल, हास्पिटल, कृषि विश्वविद्यालय, तथा कृषि विज्ञान केन्द्र को मिलकर प्रयास करना चाहिए।

(लेखक वरिष्ठ कृषि वैज्ञानिक हैं।)
ई–मेल : rkiipr@yahoo.com

विस्थापित बच्चों के लिए सतत शिक्षा सुनिश्चित करना

उड़ीसा में सूखाग्रस्त बोलंगीर के निवासी 12 वर्षीय देवराज गहीर को यह विश्वास नहीं होता कि वह कभी दोबारा स्कूल जा सकता है। जब मेरे माता–पिता ने विस्थापन शुरू किया तब पढ़ाई जारी रखने का मेरा स्पप्न बिखर गया। देवराज कहता है कि मैंने दोबारा स्कूल जाने की आशा छोड़ दी थी। उसकी समस्या इसलिए भी बढ़ जाती है कि वह शारीरिक रूप से विकलांग है। देवराज के माता–पिता वर्ष में सात माह के लिए ईंटों के भट्टों में काम करने के लिए हैदराबाद विस्थापित हो जाते हैं क्योंकि सूखे ने उनके खेत को अनुत्पादक बना दिया है।

दो वर्ष पहले उड़ीसा, सर्व शिक्षा अभियान और आंध्र प्रदेश एक्शन एड एंडिया (गैर सरकारी संगठन) ने देवराज जैसे बच्चों की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने के लिए एक सहयोगी परियोजना प्रारंभ की और ईंटों के भट्टों के आसपास आवासीय और गैर आवासीय सेतु पाठयक्रम प्रारंभ किए। इस परियोजना का प्रारंभिक उद्देश्य यह था कि जिन बच्चों को अपने मां–बाप के साथ विस्थापित होना पड़ता है, उनके शैक्षिक स्तर के अगले 6 माह बर्बाद न हों। इन सेतु शिविरों में बच्चों को पढ़ाने के लिए उड़ीसा से शिक्षक लाए जाते थे। जो बच्चे यहां पर पढ़ाई पूरी कर लेते हैं वे वर्ष के लिए परीक्षा उत्तीर्ण करने का प्रमाण पत्र प्राप्त करते हैं। जिसे वे स्थानीय स्कूलों में प्रस्तुत करते हैं। फलस्वरूप अगली कक्षा में प्रवेश सुनिश्चित हो जाता है और उनकी शिक्षा अनवरत चलती है। इन सेतु शिविरों में से एक उस ईंट भट्टे के पास स्थापित किया गया, जहां देवराज के माता–पिता काम करते थे। उसे पांचवीं कक्षा में दाखिल किया गया, जब वह वापिस अपने गांव गया तब उसे अगली कक्षा में बैठाया गया। अब देवराज को यह विश्वास है कि उसकी शिक्षा बिना किसी रुकावट के चलती रहेगी।

भोंगा शाला... स्कूलों को बच्चों तक लाना

भोंगा शाला जिला थाना महाराष्ट्र में ईंट के भट्टों से आए बच्चों को शिक्षा प्रदान करने हेतु एक नया प्रयास है। मराठी में भोंगा का अर्थ होता है अस्थायी झोंपड़ी और शाला को स्कूल कहते है। इसलिए भोंगा शाला का अर्थ है अस्थायी झोंपड़ी में स्कूल होना। विधायक संसद एक स्थानीय गैर–सरकारी संगठन ने 1995 में जिले के दो खंडों में 5 भोंगा शाला प्रारंभ की थीं। आज सर्व शिक्षा अभियान महाराष्ट्र की सहायता से जिला थाना के सात खंड़ों में 250 से ज्यादा ऐसे केन्द्र चल रहे हैं। ये केन्द्र ईंट भट्टों से आए 5000 से ज्यादा बच्चों की शैक्षणिक जरूरतों को पूरा करते हैं। भोंगा शाला यह सुनिश्चित करती है कि विस्थापन के कारण शिक्षा के निरंतर चलने में कोई बाधा उत्पन्न न हो। ईंट भट्टों के मौसम में (दिसम्बर–मई) द्वारा ईंट भट्टा परिसर में प्राथमिक स्तर (1 से 4 कक्षा) तक इन केन्द्रों के माध्यम से शिक्षा मुहैया कराई जाती है। यहां पर मुख्य धारा के स्कूलों का पाठयक्रम ही होता है परन्तु अनौपचारिक रीति से खुले वातावरण में गीतों, नृत्य और खेल जैसी गतिविधियों द्वारा पढ़ाया जाता है। इस प्रकार अध्यापक भोंगा शाला को सफल बनाते हैं।

बालू दीवा की हथेलियां नहीं हैं या यों कहिये कि उसके हाथों की अंगुलियां नहीं है और यह भी सच है कि उसकी टांगें भी नहीं है। कटकरिस नामक पिछड़ी जाति का होने के कारण उसे दरिद्रता के साथ–साथ दसवीं तक शिक्षा प्राप्त करने के लिए कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। परंतु जब वह दसवीं कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया तो वह अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त नहीं था क्योंकि पढ़ाई जारी रखने का कोई साधन नहीं था। सौभाग्य से, उसके संकल्प को विधायक संसद ने पहचाना और दो माह के कड़े प्रशिक्षण के पश्चात वह भोंगा शाला में पढ़ाने के योग्य हो गया। यद्यपि उसके लिए यह सब करना इतना आसान नहीं था। शिक्षक के रूप में काम करते हुए दूसरे वर्ष में उसे भोंगा शाला मेघ फाटा में तैनात किया गया क्योंकि यह उसकी इच्छा थी, उसने केन्द्र का निर्माण प्रारंभ किया। उसने ईंट भट्टा मालिकों और ग्रामीणों से बांस इकट्ठे किये और स्कूल बना लिया परंतु एक रात असामाजिक तत्वों ने उसका स्कूल तोड़ दिया। जब उसने प्रातः आकर स्कूल देखा तो उसकी आंखों को विश्वास नहीं हुआ। स्कूल को दुबारा बनाना बड़ा कठिन कार्य था परंतु उसने चुनौती को स्वीकार किया और नए सिरे से काम प्रारंभ किया। बालू जंगल में गया, लकड़ियां काटी, घास लाया और अन्य सामग्री इकट्ठी की तथा स्कूल का निर्माण किया परंतु अगले दिन स्कूल फिर तोड़ दिया गया। अंततः उसने जब चौथी बार स्कूल बनाया तो उसके शत्रु ने हार मान ली।

गैर–आवासीय सेतु पाठयक्रम

10 वर्षीय प्रिया रायपुर गंदी बस्ती में रहती है। एनआरबीसी केन्द्र, रायपुर में प्रवेश लेने से पहले उसने किसी भी स्कूल में दाखिला नहीं लिया था। एनआरबीसी केन्द्र (सांयकाल) से उसकी अध्यापिका कहती है कि वह उसके केन्द्र में अत्यधिक सच्ची एवं नियमित नौसिखिया है। उसके पिता माली हैं और उसकी माता पैसे के लिए कपड़े सिलती है। उसके माता–पिता दोनों अनपढ़ हैं और पढ़ाई में कोई सहायता नहीं कर सकते। अतः सारा प्रयास वह स्वयं करती है। उससे पूछो कि वह क्या करती है– बच्चे पालती हूं (मैं छोटे बच्चों का ध्यान रखती हूं)। हां छोटी प्रिया अच्छे परिवारों के बच्चों का ध्यान रखती है ताकि उसके परिवार की आय हो परंतु इससे उसके पढ़ने की भावना में कोई रुकावट नहीं होगी।

प्रिया जैसे बच्चों की मुख्य धारा के स्कूलों के लिए तैयारी हेतु गैर–आवासी सेतु पाठयक्रमों (एनआरबीसी) के माध्यम से देशभर में सहायता की जाती है क्योंकि डीपीईपी के प्रारंभ और बाद में सर्व शिक्षा अभियान दोनों आवासीय (आरबीसी) और गैर–आवासीय सेतु पाठयक्रम स्कूल में कभी न गए अथवा स्कूल को बीच में छोड़ने वाले बच्चों को मुख्यधारा के स्कूलों में प्रवेश के लिए तैयार करने हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यनीति है। छह–सात वर्ष के बच्चे जो कभी स्कूल के लिए नामांकित नहीं हुए और पढ़ाई को बीच में छोड़ चुके हैं, को मुख्यधारा के स्कूलों में सीधे कक्षा 1 में दाखिल करवाया जा सकता है। परंतु बड़ी आयु के बच्चों (8–14 वर्ष) को जो कभी स्कूल नहीं गए अथवा पढ़ाई बीच में छोड़ चुके हैं उन्हें मुख्यधारा के स्कूल में उनकी आयु के अनुरूप कक्षा में बैठाने के लिए तैयार करने हेतु समय की आवश्यकता होती है। बड़ी आयु वर्ग के कभी स्कूल न गए अथवा पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले बच्चों को संक्षिप्त पाठयक्रम के माध्यम से अधिक शिक्षा देकर मुख्यधारा के नियमित स्कूलों में दाखिला के योग्य बनाने हेतु ये सेतु पाठयक्रम सुविधाएं प्रदान करते हैं। जबकि आवासीय सेतु पाठयक्रम मुख्यतः लंबी अवधि के होते हैं और ये पाठ्यक्रम बड़ी उम्र के बच्चों एवं अधिकतर ऐसे बच्चों के लिए होते हैं, जिन तक पहुंचा न जा सकता हो। गैर आवासीय सेतु पाठयक्रम सामान्यतः छोटी अवधि के लिए होते हैं। इन पाठ्यक्रमों के जरिए कभी स्कूल न गए या बीच में पढ़ाई छोड चुके बच्चों को मुख्यधारा के स्कूलों में दाखिल होने के लिए तैयार किया जाता है। लेकिन एनआरबीसी पाठयक्रम स्थानीय जरूरतों के अनुसार प्रिया तथा बड़ी उम्र के बच्चों के लिए भी चलाए जाते हैं जिन तक पहुंचना मुश्किल होता है। जहां तक प्रिया का संबंध है वह दिन में चलने वाले स्कूल में दाखिला नहीं ले सकते क्योंकि दिन के समय उसे काम करना होता है।

(पसूका)

श्रेष्ठ प्रथाएं : मध्याह्न भोजन स्कीम का कार्यान्वयन

मध्याह्न भोजन कार्यक्रम के कार्यान्वयन में अनेक श्रेष्ठ प्रथाएं उभर कर आई हैं जिनमें अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित शामिल हैं :–

तमिलनाडु : राज्य सरकार मध्याह्न भोजन कार्यक्रम को केन्द्रीय सहायता प्राप्त कार्यक्रम से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम के रूप में कार्यान्वित कर रही है। तमिलनाडु सरकार 2 से 4 वर्ष, 5 से 9 वर्ष, 10 से 13 वर्ष तथा 14 से 15 वर्ष के विभिन्न आयु–वर्गों के बच्चों, जिनमें पूर्व–स्कूल से उच्च माध्यमिक स्तर के बच्चे शामिल हैं, को मध्याह्न भोजन प्रदान करती है। राज्य सरकार ने विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए विनिर्दिष्ट फीडिंग स्तर निर्धारित किया है जिसके तहत उन्हें प्रोटीनयुक्त भोजन जिसमें उबले काले चने, हरे चने, आलू तथा अण्डे शामिल हैं, प्रदान किया जाता है।

पुडुचेरी : कक्षाएं शुरू होने से पहले नाश्ते के लिए दूध तथा मीठे ब्रैड दिए जाते हैं तथा शाम को बच्चों के घर जाने से पहले उन्हें सायंकालीन स्नैक्स दिए जाते हैं। यह उन्हें दोपहर के भोजन के अलावा दिए जाते हैं।

बिहार : बिहार के कई स्कूल के बच्चों की संसद बनाई गई है। बाल संसद भोजन के परोसने के काम में सक्रिय रूप से सहयोग कर ही है।

कर्नाटक : कर्नाटक में बच्चों की नियमित स्वास्थ्य जांच के लिए 'सुवर्ण चैतन्य आरोग्य' कार्यक्रम चलाया जा रहा है। सभी बच्चों के लिए स्वास्थ्य कार्ड तैयार किए जाते हैं तथा गंभीर बीमारियों से ग्रस्त बच्चों को रैफरल सेवाएं प्रदान की जाती हैं। मूक और बधिर बच्चों को **सर्व शिक्षा अभियान** के तहत सहायक उपकरण प्रदान किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य ने 20,000 प्राथमिक स्कूलों में 'स्वास्थ्य प्लस' किचन गार्डन नामक कार्यक्रम शुरू किया है जिसमें बच्चे सब्जियां उगा सकते हैं और इन सब्जियों को मध्याह्न भोजन में प्रयुक्त किया जाता है।

कर्नाटक ने रसोइयों की नियुक्ति के लिए एक रोस्टर प्रणाली भी शुरू की है। इसके अनुसार (क) उस स्कूल जिसमें दो रसोइया हैं, में कम से कम एक रसोइया अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति का होगा, (ख) तीन रसोइयों वाले स्कूल में एक रसोइया अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति का तथा एक अन्य पिछड़ा वर्ग का होगा तथा (ग) उस स्कूल जिसमें चार रसोइया हैं, में कम से कम एक रसोइया अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा एक अन्य पिछड़ा वर्ग तथा एक अल्पसंख्यक समुदाय का होगा।

गुजरात : राज्य में सूक्ष्म पोषक तत्वों तथा कृमिनाशक गोलियों का प्रावधान है, स्वास्थ्य जांच नियमित रूप से की जाती है।

छत्तीसगढ़ : छत्तीसगढ़ के कुरिया जिले में राज्य स्वास्थ्य संसाधन केन्द्र ने मध्याह्न भोजन कार्यक्रम में सहायता प्रदान करने के लिए **मिठानिन्स** (अंगरंग मित्र) संगठन बनाए हैं।

राजस्थान : जबकि अधिकांश स्कूलों में भोजन पकाने का कार्य स्कूल विकास एवं प्रबंध समिति द्वारा नियुक्त रसोइया द्वारा किया जाता है लेकिन राज्य सरकार ने प्रत्येक ब्लाक की दो पंचायतों में दोपहर का भोजन प्रदान करने के लिए **अन्नपूर्णा महिला सहकारी सोसाइटी** बनाई है। भोजन केन्द्र में स्थित एक स्कूल में पकाया जाता है और पंचायत के विभिन्न स्कूलों में वितरित किया जाता है। वर्तमान में 463 अन्नपूर्णा महिला सहकारी सोसायटियां 3500 स्कूलों के 3 लाख से भी अधिक बच्चों को मध्याह्न भोजन प्रदान कर रही हैं। (पसूका)

आज़ादी के 60 साल

जय हिन्द

शक्तिशाली लोकतंत्र
सुदृढ़ धर्मनिरपेक्षता

प्रगतिशील अर्थव्यवस्था
सर्वजन विकास

भारत बने बेमिसाल

सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

davp 22202/13/0018/0708

KH-09/07/02

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)-05/3164/2006-08
आई.एस.एस.एन. 0971-8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)-55/2006-08

R.N./708/5
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2006-0
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-0
to Post without pre -payment at R.M.S. Delh

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : प्रभारी संपादक : कैलाश चन्द मीना